जिस तरह वेद में कर्म, उपासना, और ज्ञान का निरूपण किया गया है। इसी भाँति गीता में भी कर्म, उपासना और ज्ञान का निरूपण किया गया है। गीता का मुख्य उपदेश निष्काम कर्म करना फिर उपासना और उपासना से ज्ञान प्राप्त करना है। अतः कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों ही मोक्ष के कारण हैं। इन तीनो में से एक के भी न होने से दोनों बेकार हो जाते है, यह सदा एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। क्यों कि कर्म करने से अन्तः करण शुद्ध होता है, उपासना से चित्त की एकाग्रता होती है, चित्तएकाग्र होने पर ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों के साधन की आवश्यकता है।

संसार में मनुष्य शरीर पाकर जिसने इस गीता के उपदेशरूपी सघन वन में घुस कर विहार न किया वह सत् असत् को न जान कर अमृत के धोखे विष पान किया, अथवा कामधेनु के दुग्ध को त्याग कर अज्ञानता वश आक (मदार) के दूध को खोजते है। अतएव जिन्हें जन्म मरण से नहीं नहीं

संसार के घोर कष्टों से छुटकारा पाना हो, उन्हें गीता की शरण आना चाहिये। और भली भाँति समझ कर पढ़े, पढ़ावें सुने और सुनावें। क्योंकि गीताका विषय कठिन है, इसमें ज्ञानकी बातें हैं। ज्ञानकी बातें बिना समझे बिना बुद्धि लड़ाये माथेमें नहीं घुसता। और जो बात समझ में नहीं आती उन बातों को केवल रट लेने से कोई फल नहीं मिलता। बल्कि उपदेश का अर्थ है, उसके अनुसार समझ कर कार्य्य करना। तब ही फल प्राप्त होता है। गीता श्रीकृष्ण प्रदत्त उपदेश है—अतएव इस गीता रूपी उपदेश के एक एक अक्षर एक एक पद एक एक शब्द तथा वाक्य को भली भाँति समझ कर पढ़ना और सुनना चाहिये क्योंकि यह गीता ज्ञान का भण्डार है। तथा इसमें किसी मुख्य ऋषि अथवा सम्प्रदाय की शिक्षाओं का प्रतिपादन नहीं किया गया। यह तो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण नारायण का गुह्य उपदेश है। जो द्वापर और कलियुग के सन्धिकालमें अपने प्रिय सखा (अर्जुन) के प्रति कुरुक्षेत्र के भयङ्कर रणाङ्गन में दिया था। अतः इस गीता का उपयुक्त बोध श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध जोड़े बिना नहीं हो सकता।

एवं गीता के उत्कृष्ट उद्देश्य शुभकर उपदेश और कठिन तथा गम्भीर विषय के तत्वको न समझने के कारण जन समाज का उतना उपकार नहीं होता जितना होना चाहिये।

तथा संसार इस दुर्लभ अमृत को देख देख तथा पूज पूज कर ही विना पान कियेही रह जाते हैं। ऐसे अनेक कारणोंको देखते हुए यह गीता का अनुपमेय ग्रन्थ हाथ में लिया। माहात्माओं के सत्संग से तथा अनेक गीता पढ़ कर और सुन कर "यह पद्यानुवाद" सरल शब्दों में समझाने का उद्योग किया है। फलतः यह पुस्तक आज से चार वर्ष पूर्व ही तय्यार हो चुकी थी, परन्तु हिन्दी प्रकाशकों की अनुदारता और मेरे पास द्रव्य न होने के कारण यह पुस्तक अप्रकाशित पड़ी रही। इस पुस्तक के लिखने का मेरा स्वप्न में भी यह प्रयोजन नहीं है, कि मैं अपनी विद्वत्ता का परिचय देकर विद्वानों में गणना कराऊं। क्योंकि मैं यह भलीप्रकार समझता हुं कि अब तक अनेक पद्यानुवाद बड़े बड़े विद्वान निकाल चुके है उनके सामने यह पद्यानुवाद कदाचित हास्य प्रद ही होगा। तथापि मेरा तो कल्याण ही होगा। अतएव इस कार्य में जितने दोष और भूलें हैं, वह मेरी मूढता और अज्ञानता के कारण हैं, और जो अच्छापन है वह ईश्वर कृपा और गुरु प्रसाद तथा विद्वानो की महान् अनुकम्पा है पुस्तक लिखने से पूर्व ही यह विचार कर लिया था। कि पुस्तक ऐसे ढंग से लिखी जावे कि बालको पयोगी सिद्ध हो। इस लिये विद्यार्थियों को हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त 'लिखित' जयद्रथ बध तथा भारत भारती को बड़े चाव से पढते देखा है। अतः उसी छन्द में यह

हिन्दी पद्यानुवाद 'सत्य उपदेशामृत' आज आप लोगों के सामने परीक्षार्थ में रखने का साहस करता हूँ। यदि हिन्दी के किसी प्रेमी पाठक या विद्यार्थियों को लेशमात्र भी रुचिकर प्रतीत हुआ तो मैं अपना परिश्रम सुफल समझूँगा।

स्वा०=सत्यदेव सरस्वती
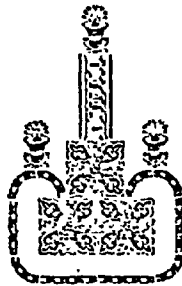
* दो शब्द *

जिस प्रकार भौंरा सब तरह के पुष्पों से सार ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष को चाहिये की शास्त्रीय अनुबन्धों से युक्त होकर (कर्म, उपासना और ज्ञान) इन तीनों काण्डों का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ गीता जो वेदान्त शास्त्र, उपनिषदों का सार रूप है ग्रहण करना चाहिये। शास्त्रीय अनुबन्ध चार हैं यथा अधिकारी, अभिधेय, सम्बन्ध और प्रयोजन इस प्रकार यह चार ही शास्त्रोक्त अनुबन्धन हैं।

जो पुरुष सद् विवेकी, वैराग्यवान, शम दम आदि षट् सम्पत्ति युक्त और मुमुक्षु हो वही ब्रह्म जिज्ञासा का अधिकारी माना गया है। ब्रह्म के साथ जो जीवकी एकता है वही इसका विषय कहा गया है। सम्पूर्ण अनर्थों का नाश और नित्यानन्द का जो प्राप्त होना है वही इसका प्रयोजन कहा गया है। तथा इसका सम्बन्ध तो कई प्रकार का है बुधजन वेदान्त शास्त्रों से प्रतिपादित ब्रह्म और जीव की एकता के साथ शास्त्रों का बोध्य-बोधक भाव सम्बंध मानते हैं इसी प्रकार ब्रह्म और जीव की एकता के ज्ञान का वेदान्त

शास्त्र के साथ उत्पाद्य-उत्पादकभाव तथा मुक्ति और शास्त्र में प्रयोज्य-प्रयोजक भाव सम्बन्ध माना है। ऐसे ही बोध और मुक्ति में साधन साध्य भाव सम्बन्ध है यही वेदान्त शास्त्रों में विद्वानोंने चार प्रकार का सम्बन्ध कहा है।

कदाचित् ऐसी शङ्का भी उठ सकती है कि भेद सत्य है और संसार बन्धन भी मिथ्या नहीं है इसलिये (जीव ब्रह्म की एकता) रूप विषय और उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकते। क्योंकि इन दोनों की सिद्धि न होने के कारण बुद्धिमान् पुरुषों की इसमें प्रवृत्ति भी नहीं होसकती, और भेद को ही इसका विषय माना जाय तो वेदान्त का निबन्ध ही नहीं बन सकता। परन्तु ऐसी शङ्का निर्मूल है क्योंकि कल्पित होने के कारण बन्धन और भेद दोनों ही सत्य नहीं है। अतः विषय और प्रयोजन की भी सिद्धि होसकती है। इसलिये कि भेद और बन्धन इन दोनों की कल्पना अविद्या से ही हुई है वही अविद्या चिन्मात्र आत्म तत्त्व को आच्छादित कर इस लोक में भेदादि का प्रादुर्भाव करती है। परब्रह्म अपने प्रबल अज्ञान से आच्छादित होने के कारण ही वह जीव, ईश्वर और जगत रूप से विदित होरहा है। और अज्ञाना-वरण आदि शक्ति से ही जन्म मरणादि में समर्थ होता है। उस अज्ञान का आत्माश्रयत्व (आत्मा के ही आश्रित रहना) और भी एक महान् बल है। इसलिये यह आत्मा अपने अखण्ड अद्वयरूप यानी यथार्थ स्वरूप को न जानकर आत्मा में अनात्मा

(अहंकार) का अध्यास कर नाना प्रकार से प्रवृत्त होता है। यथा— यह जगत है, वह ईश्वर है, मैं काम्य कर्मों का कर्त्ता और उनके फल का भोगने वाला जीव हूं, मैं मनुष्य हूं, मेरा पुत्र है, माता है, पिता है, मैं धनी हूं, विद्वान हूं, ब्राह्मण हूं, मैं शूरवीर क्षत्रिय हूं, अग्निहोत्री हूं, अतिथियों का सत्कार करने वाला हूं, मैं दण्ड कमण्डलु धारी मुण्डित केश परमहंस यति हूं इत्यादि प्रकार का यह व्यवहार मूढ़ और पण्डित दोनों ही का देखा जाता है। इसका अध्यास के सिवा और कोई कारण नहीं देखा जाता। इस प्रकार के अध्यास को उत्पन्न करने में एक मात्र अज्ञान ही समर्थ है। क्योंकि आत्मा में जाति की कल्पना करने में सदृशता का व्यभिचार है। (आत्मा अखण्ड और एक मात्र है, जब उसमें भेद ही नहीं है तो भिन्न पदार्थों में रहने वाली सदृशता ही कैसे रह सकती है ? अतः सदृशता का अभाव होने के कारण आत्मा में ब्राह्मण अथवा मनुष्य आदि जाति की कल्पना भी नहीं हो सकती)। अतः प्रत्यगात्मा में बन्धन और भेद अविद्याजनित ही है, स्वतः नहीं। स्वयं आत्मा तो नित्य, शुद्ध, स्वयं प्रकाश और अद्वयस्वरूप है। और यदि कोई शंका करे कि शुद्ध और स्वयं प्रकाश चिदात्मा में अज्ञान कहां से आया, क्योंकि किसी भी निरोग नेत्र वाले पुरुष ने सूर्य में कभी अन्धकार नहीं देखा और अज्ञान के बिना चित्स्वरूप आत्मा में आवरण भी नहीं होसकता; फिर बताओ आवरण के बिना इस आत्मा में अध्यास भी कैसे

हो सकता है ? ठीक है परन्तु जिस प्रकार सूर्य सबको प्रकाश देने वाला है, फिर उल्लू पक्षी की दृष्टि में जैसे अन्धकार की कल्पना होजाती है, उसी प्रकार से अज्ञजनो के अनुभव से ही स्वप्रकाश आत्मा में अज्ञान कल्पित हुआ है। जिस प्रकार मेघों से ढँका हुआ सूर्य उन मेघादि को भी प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अज्ञान से ढँका हुआ आत्मा उसके कार्य सहित अज्ञान को प्रकाशित करने वाला है। जिस प्रकार बाह्य अन्धकार देखा जाता है उसी प्रकार यह आन्तरिक अन्धकार है अत. इसने भी अपने आश्रय आत्मा को आच्छादित किया हुआ है। वह अज्ञान आत्मा में स्थित रहकर आत्मा और अनात्मा में एक दूसरे का मिथ्या अध्यास उत्पन्न कर देता है औ आत्मा को बन्धन में डालने वाला है।

यदि कोई ऐसा कहे कि अध्यस्त पदार्थ मिथ्या हुआ करता है, जैसे सीपी में चाँदी तथा रज्जु में सर्प। अतः जिस प्रकार चाँदी और सर्प अध्यस्त होने कारण मिथ्या है उसी प्रकार यदि आत्मा को अनात्मा में अध्यस्त माना जायगा तो वह भी मिथ्या सिद्ध होगा। नहीं ऐसा नहीं सुनो जिस प्रकार सीप में चाँदी की भ्रान्ति होने पर सीपी की नीली पीठ और उसकी त्रिकोणता नहीं भासती उसी प्रकार भ्रान्तिकाल में आत्मा का अखण्ड अद्वितीयत्व प्रतीत नहीं होता। दूसरे जिस समय सीपी में चाँदी की प्रतीति होती है और यह कहा जाता है "इदं रूप्यमस्ति" (यह चाँदी है) तो इस

वाक्य में "इदम्" (यह) पद से चाँदी की अधिष्ठान भूल सीपी ही लक्षित होती है। इस प्रकार चाँदी का अध्यास होने पर भी इदम्– अंश से सीपी चाँदी में अनुगत रहती ही है। जिस प्रकार भ्रान्त पुरुष सीपी के इदम्– अन्श में चाँदी का रजतत्व देखता है, एवं आत्मा भी अज्ञान वस अपने ही में कर्तृत्व आदि धर्म देखा करता है। ऐसा समझ कर ही ब्रह्म के साथ जीव का अभेद ज्ञान होना ही मोक्ष का साधन है।

मनस्वियों ने जिज्ञासा के चार साधन बताये हैं, उनके होने से ही सत्य स्वरूप आत्मा में स्थिति होती है अन्यथा नहीं होती। वह चार साधन इस प्रकार है— पहिला साधन नित्यानित्य वस्तु का ज्ञान होना ही "विवेक" दूसरा साधन लोक एवं पारलौकिक सुख भोगों की इच्छा न करना "वैराग्य" तीसरा साधन षट् सम्पत्ति हैं और चौथा साधन मुमुक्षुता कहा है साथ ही शुद्ध अन्न सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

जिज्ञासा के मूल कारण उपरोक्त चार साधनों को समझ कर कार्य में न लाने वाले उसी प्रकार हैं जैसे "बकरी के गले में थन" क्योंकि मनुष्य देह को पाकर जो स्वार्थ साधन में प्रमाद करता है इससे अधिक और मूढ़ कौन होगा। अतः उक्त साधनों का प्रथक प्रथक विस्तार पर विचारिये।

(१) नित्य क्या है और अनित्य क्या है अथवा ब्रह्म सत्य

है और जगत मिथ्या है ऐसा जो निश्चय है वही विवेक कहलाता है।

(२) दर्शन और श्रवण आदि के द्वारा देह से लेकर ब्रह्म लोक पर्यन्त सम्पूर्ण अनित्य भोग्य पदार्थों में जो घृणा बुद्धि है वही वैराग्य कहलाता है।

(३) षट् सम्पत्ति– यह छः साधनों का समूह है यथा—

शम— सम्पूर्ण विषय समूहों से दोषदृष्टि करके विरक्त होकर मन को अपने लक्ष में स्थिर होजाना ही "शम" कहाता है।

दम— कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को उनके विषयों से खींचकर तथा सूक्ष्म वासना से हटाकर अपने अपने गोलकों में स्थित करने को दम कहते हैं।

उपरति— वृत्ति का बाहरी विषयों का आश्रय न लेना हो उत्तम उपरति कहलाती है।

तितिक्षा— चिन्ता और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किये सब प्रकार के कष्टों को सहन करना ही तितिक्षा कहलाती है।

श्रद्धा— शास्त्र और गुरु वाक्यों में (सत्यत्वबुद्धि) विश्वास करनाही विद्वानों ने श्रद्धा कहा है। इसी से वस्तु की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं।

समाधान— अपनी निर्मल बुद्धि को भक्ति से शुद्‌ध ब्रह्म में स्थिर करना ही समाधान कहते हैं। बाह्य पदार्थों से मनकी इच्छा पूर्ति करना समाधान नहीं है। उपरोक्त छः साधन समूहों का नाम षट्‌ सम्पति कहा गया।

(४) मुमुक्षुता—अहंकार से लेकर देह पर्यन्त जितने अज्ञान कल्पित बन्धन हैं उनको अपने स्वरूप से ज्ञान द्वारा त्यागने को ही मुमुक्षुता कहते हैं।

मुक्ति की कारण रूप सामिग्री में भक्ति ही सब से बढ़कर है और अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसन्धान करना ही भक्ति कहलाती है। कोई कोई स्वात्मतत्व का अनुसन्धान ही भक्ति है ऐसा कहते है।

वाचिक ज्ञान निःसार है- याद रखना चाहिये कि केवल वेदान्त की पुस्तकों के पढ़ने से और तर्क द्वारा वेदान्त के सिद्‌धान्तों को समझने से कोई ज्ञानी नहीं हो सकता, शास्त्र का पठन तो केवल विवेक के लिये है। ज्ञानकी प्राप्ति तो साधन द्वारा ज्ञानयोग के अभ्यास से ही होती है। शास्त्र में पाण्डित्य होने से विषय का बुद्धि द्वारा ज्ञान अवश्य होता है, किन्तु यह ज्ञान मार्ग बता देता है, इससे आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। उपनिषद्‌ में लिखा है कि- वह (आत्मा) निश्चय सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और सब तर्कों से परे है यह (आत्म भाव) तर्क से प्राप्त नहीं होता।

जिसने कुत्सित कर्मों का करना नहीं छोड़ा, जिसकी इन्द्रिया वश नहीं हुई, जिसका मन एकाग्र न हुआ और जिसका चित्त शान्त न हुआ, ऐसा पुरुष केवल पुस्तक जनित ज्ञान के द्वारा आत्मा को प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आत्मा कठिनता से देखा जाने वाला है, गुप्त रीति से व्याप्त है, हृदय में टिका हुआ है, गुहा में छिपा है और सनातन है। अध्यात्म योग के ज्ञान द्वारा विद्वान पुरुष परमात्मा को जानकर, हर्ष और शोक का त्याग करता है। जैसे तिल में तैल, दही में घी, काष्ट में अग्नि गुप्त रहता है, वैसे ही परमात्मा आत्मा में है। वह उसके द्वारा पाया जाता है, जो उसको सत्य और ध्यान द्वारा खोजता है। अध्यात्म शम, दम और सदाचार उस ज्ञान की आश्रय (सहारा) हैं, वेद अङ्ग है और सत्य उसके रहने का स्थान है। वह शरीर के भीतर ज्योतिः स्वरूप जाज्वल्यमान है जिसको यति लोग पापरहित होकर देखते हैं। वह आत्मा नेत्र से, वाक्य से, किसी दूसरी शक्तियों से और केवल ध्यान तथा कर्मों के द्वारा भी नहीं मिल सकता। शुद्धान्तः करण होकर ज्ञान होने पर ही देखने में आता है, इसके पूर्व नहीं। ध्यान द्वारा वह उसको अनवच्छिन्न देखता है। इसलिए साधन और सदाचार की अत्यावश्यकता है।

गी० प्रे०

सत्यदेव सरस्वती

* श्रीमान् राव बहादुर सिंह राणावत *
करणसर

श्रीमान् राव बहादुरसिंहजी का परिचय

स्वाधीनता की वलिवेदि पर सर्वस्व न्योछावर करनेवाले सीसोदिया वंशके दीपक महाराणा प्रतापको सभी इतिहास वेत्ता जानते हैं। हमारे चरित नायक का जन्म उसी महा पुरुष के वंश में हुआ है, आप महाराना प्रतापके दश कुमारो में चतुर्थ राजकुमार की ६ पीढी में उत्पन्न होने वाले सर्व गुणा लंकृत वीर केशरी देवी सिंहजी से सवत १९१४ में पैदा हुए हैं उक्त सरदार अर्थात् श्रीमान् राव वहादुर सिंहजी अपने वंशज सभी वीरता उदारता विद्वत्ता गुण आहिता सत् प्रियता दयालुता ईश्वर भक्ति कर्तव्य निष्ठा आदि सभी गुणों से भूपित हैं श्रीमान् की कार्य्य पटुतासे सन्तुष्ट होकर वृटिश गवर्न्मेंएट ने आपको स्वर्ण पदक प्रदान कर गुण आहिताका परिचय दिया है आपने श्रीमहाराजा साहिव सर्वो पाधि भूषित परम नीतिज्ञ रामसिंहजी महोदय के शासन कालसे लेकर अनेक उत्तर दायिल पूर्ण पदों पर जैसे पुलिस विभाग शिकार खाना आदि पर सर्वोच्च आफिसर रहकर कार्य किया है आप सर्वदा कृत कार्य्य यशस्वी रहे हैं श्रीमहाराजा रामसिंहजी से लेकर श्रीमहाराजा सवाई मान सिंहजी के सुव्यवस्थित प्रशस्य शासन कालतक सुदीर्घ समय में कभी कर्तव्य परायणतासे वञ्चित न हुए प्रत्युत सर्वदा यशो भाजन वने आपकी सेवाओं से महाराज धिराजों को सर्वदा

अतुल हर्ष रहा आपकी नीतिसे राजा प्रजा सभी वर्ग खुश थे यह गौरव आप जैसे किसी विरले महा पुरुषको ही प्राप्त हो सकता है आपकी अनुपम सेवाओं से सुप्रसन्न जयपुर के भाग्य विधाता सुशासक वर्तमान मान जयपुर सम्राट् श्रीमहाराजा मानसिंहजी ने आपको राव पदवी से भूषित किया तथा कर में से पाँच घोड़ो की नौकरी रूप कर को क्षमा कर अपूर्व गुण ग्राहकता पूर्ण औदार्य्य दिखलाया।

आपके सुपुत्र कुवंर किशोर सिहंजी भी अपने पिता के समान राज्य कार्य कुशल विद्वान तथा क्षात्र धर्म से पूर्ण भिज्ञ हैं और वर्तमान नरेश के ए० डी० सी० हैं।

आप जैसे सांसारिक कार्यों में कर्म्म शील हैं। एवं दक्ष हैं आपको वेसे परम पुरुषार्थ प्राप्ति जो मानव जीवनका मुख्य ध्येय है उसमें भी पूर्ण अनुराग है आप वेदान्त चर्चाओं में अनेकशः आत्माको परमानन्द प्लुत बनाते हैं। आपने अध्यात्मका सर्वोत्तम ग्रन्थजो गीता है उस पर उपदेशामृत नामक टीका श्री स्वामी सत्यदेवजी सरस्वतीजी से बनवाकर मुद्रित करवाई है तथा सर्व साधारण की सुगमता के लिये बिना मूल्य वितरित कराई है श्रीयुत् राव साहिब बहादुरसिंहजी का यह कार्य्य स्तुत्य एवं धन्यवादा स्पद है ईश्वर ऐसे सद् विचार शील कर्तव्य तत् पर रईस को सर्वदा के लिये चिरजीवी बनावे।

—:※:—

॥ श्री गीता-महिमा ॥

—:(*):—

मोह को मिटाती प्रकटाती आत्मबोध शुद्ध'
भीरुता भगाती युद्ध वीरता जगाती है ।
रण में छुड़ाती अकर्मण्यता से निष्क्रयी को,
कौन तू है विश्व क्या है तथ्य समझाती है ॥

जीवन में विश्व विजयी का है पढ़ाती पाठ,
मरणोपरान्त मोक्ष द्वार दिखलाती है ।
प्यारी योगियों की औ वियोगियों की भोगियों की,
शान्ति सुख दात्री एक गीता कहलाती है ॥

कल्याण

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

॥ ॐ ॥

* मंगल ध्यानम् *

ॐ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारयणेन स्वयं,
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिनां मध्ये महाभारतम् ॥
अद्वैतामृतवर्षिणी भगवतीमष्ठादशाध्यायिनी,
मम्ब त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् १

हिं० पद्य १

गीते ! तुम्हारे ज्ञान की अव्यक्त महिमा को अहा।
रणक्षेत्र में श्री कृष्णने स्वयमेव अर्जुन से कहा ॥
जिन साधनों की सिद्धि से था पार्थ कों सत्पथ दिखा।
भगवान वेदव्यास ने उसपर महाभारत लिखा ॥

(२)

अध्याय अष्टादश सुखद करते दुखों से मुक्त हैं।
अद्वैत अमृत वारिधर से वे सदा ही युक्त हैं ॥
हो मातु सम हित पूर्ण कहते मोक्ष का कारण तुम्हें ।
अतएव मैं निज शुद्ध मनसे कररहा धारण तुम्हें ॥

मूल

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे,
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्ण:–
प्रज्वालितो ज्ञानमय प्रदीपः ॥२॥
प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञान मुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥३॥

हिं० पद्य ३

हे विज्ञ वेदव्यास ! तुमको बार बार प्रणाम है।
शुभ ज्ञान-दीपक को जलाकर श्रम किया निष्काम है ॥२॥
हे भक्त कल्पद्रुम ! तुम्हें भी है प्रणाम जगत्पते !
तुमने किया है व्यक्त गीतामृत महा मायापते !! ॥३॥

मूल

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥४॥

हिं० पद्य ४

सब उपनिषद हैं धेनु के ही तुल्य दोग्धा श्याम हैं।
पय-पान करते वत्स अर्जुन के सदस सुख धाम ॥
हैं भक्त जो अन्तःकरण से नित्य धरते ध्यान है ।
करते वही गीता-सुधा का प्रेमसे नित्त पान है ॥४॥

मूल

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥५॥

हिं० पद्य ५

वसुदेवनन्दन आपकी करता प्रभो मैं वन्दना ।
चाणूर केशी कंस आदिक दैत्य-गण तुमने हना ॥
था देवकी को आपने आनन्द से गद् गद् किया।
हे जगद्गुरु कल्याण का उपदेश तुमने था दिया ॥५॥

मूल

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला-गांधारनीलोत्पला,
शल्य ग्राहवती कृपेणवहनी कर्णेनवेलाकुला ।

अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा-दुर्योधनावर्तिनी,
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी-कैवर्तकः केशवः

हिं० पद्य ६

दुर्जय धनुर्धर भीष्म द्रोणाचार्य जिसके कूल हैं।
जिसका जयद्रथ सलिल शल्य-ग्राह अति दुख मूल हैं॥
कृप की कृपा से वेग जिसमें कर्णरूपी वेलि है।
अरु द्रोण-सुवन विकर्ण आदिक मकर करते केलि हैं॥

(७)

पड़ते सुयोधन से प्रबल हैं चक्र जिसमें रोपसे।
कुरुतनय सरसिज से जिसे करते कलंकित दोपसे॥
उस समर सरिता पारकर्ता कृष्ण ही केवट बने।
सुखसे तरे पाण्डव विजय पा शान्ति युत सुषमा सने॥६॥

मूल

पाराशर्यवचः सरोजममलं-गीतार्थगन्धोत्कटं,
नानाख्यानककेसरं हरिकथा-संबोधिनाबोधितम्।

लोके सज्जनषट्पदैरहरहः- पेपीयमानं मुदा,,
भूयाद्भारतपङ्कजं कलिमल प्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥७॥

हिं० पद्य ८

कलिमल हरण भारत कमल मुनि व्यास वाणी सरउने ।
बहुवार्ता उपदेश अरु गीतार्थ परिमल से पगे ॥
बुध जन भ्रमर इव नित्य ही करते सुधा-रस पान हैं ।
कितना किया उपकार देकर विश्व को सद् ज्ञान है ॥७॥

मूल

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥८॥

हिं० पद्य ६

जिनकी कृपासे मूक भी बनते अहो वाचाल हैं ।
अति सहज ही में पङ्गु होते पार गिरि सुविशाल ॥
करते सदा सम्भव असम्भव साध्य क्यों न असाध्य हो
हे हे जनार्दन नौमि शत शत तुम जगत आराध्य हो ॥८॥

मूल

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्तिदिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतने मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगण देवाय तस्मै नमः ॥

हिं० पद्य १०

जिनकी सदा हो वन्दना करते तरुण अनुरक्त हो ।
धरते सदा सुर ध्यान विधि सनकादि ईश विरक्त हो ।
नित रुद्र मरुत सुरेन्द्र करते सुयश का शुभ गान हैं
उनको प्रणाम अनेक जिनका सिद्ध धरते ध्यान हैं ॥६

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

सत्य उपदेशामृत

श्रीमद्भगवद्गीता

का

हिन्दी पद्यानुवाद

॥ प्रथमोऽध्याय. ॥

॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाःपाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

॥ संजय उवाच ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

हिन्दी पद्य (१)

धृतराष्ट्र बोला

समरेच्छुमो सुत पाण्डवों ने क्या किया? संजय कहो ।
कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र में सेना सहित एकत्र हो ॥

संजय बोला

राजन्! बनाकर व्यूह सेना पाण्डवों की थी खड़ी ।
आचार्य से जाकर सुयोधन ने कहा यों उस घड़ी ॥

मूल

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

हिन्दी पद्य (२)

आचार्य देखो! पाण्डुपुत्रों को प्रबल सेना घनी।
जिसकी अलौकिक व्यूह रचना द्रुपदसुतद्वारा बनी ॥३॥

योधा अनेकों हैं धनुर्धर भीम अर्जुन सम यहां।
सात्यकि विराट महारथी त्यों द्रुपद किससे कम कहां ॥४॥

मूल

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्चवीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

हिन्दी पद्य (३)

बलवान काशीराज कुन्तीभोज हैं पुरुजित तथा।
त्यों चेकितान प्रसिद्ध हैं भट शैव्य के बलकी कथा ॥५॥

है उत्तमौजा ओजशाली विक्रमी युधमन्युभी ।
त्यों द्रौपदेय महारथी नर-सिंह वह अभिमन्यु भी ॥६॥

मूल

अस्माकंतु विशिष्टाये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमिते ॥७॥

हिन्दी पद्य (४)

देखो खड़े हैं द्रौपदी के पुत्र पांचों भी यहां ।
जितने प्रसिद्ध महारथी हैं युद्ध-हित संस्थित यहां ॥ ६॥

द्विज श्रेष्ठ सुनिये ध्यान दे निज ओर जो बलधाम हैं ।
उन मुख्य सेना नायकों के ये प्रसिद्ध सुनाम हैं ॥७॥

मूल

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्ध विशारदाः ॥९॥

हिन्दी पद्य (५)

हैं आप भीष्म विकर्ण कर्ण अजेय जितने शूर हैं।
तव पुत्र अरु भूरिश्रवा जो शूर अति बलपूर हैं ॥८॥
ये सब तथा अन्यान्य जितने शूर हैं यह जानिये।
प्रस्तुत सभी हैं युद्ध करने को कहा सच मानिये ॥९॥

हिन्दीपद्य (६)

सब युद्ध–विद्याकी कलाओंमें कुशल ये वीर हैं।
हैं निपुण शस्त्र प्रहार में विकराल इनके तीर हैं ॥
आचार्य ! ये सैनिक हमारे धीर अति गम्भीर हैं।
हटते नहीं रण–क्षेत्र से सब वीर हैं, रण–धीर हैं ॥९॥

मूल

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तंत्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

हिन्दी पद्य (७)

यदि यूथ-पति हैं भीष्मसेना भी प्रबल मेरी महा।
फिर भी समर्थ न जान पड़ती शोक एवं है अहा ॥

वह पाण्डवों की क्षुद्र सेना दीखती पारियाप्त है ।
यूथ-नायक भीम भी बल युक्त रण में व्याप्त है ॥१०॥

मूल

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥
तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौप्रतापवान् ॥१२॥

हिन्दी पद्य (८)

मिलकर सभी चहु ओर से तुम भीष्मका रक्षण करो ।
हे सैनिको ! कर्तव्य पर सर्वस्व अब अर्पण करो ॥११॥
तब वृद्ध कौरव भीष्मने कर सिंह गर्जन शीघ्र ही ।
ऐसी बजाई दुन्दुभी कम्पित हुई सारी मही ॥१२॥

मूल

ततः शंङ्खाश्चभेर्यश्चपणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौप्रदध्मतुः॥१४॥

हिन्दी पद्य (६)

सुन शङ्खरव गम्भीर दुर्योधन महा हर्षित हुआ ।
बजने लगे बाजे सभी का जोश था वर्धित हुआ ॥१३॥
बैठे महारथ में तुरत थे श्वेत-हय जिसमें जुरे ।
श्रीकृष्ण-पाण्डवशंख-रवकरने लगे रण बाँकुरे ॥१४॥

मूल

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मावृकोदरः॥१५॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रोयुधिष्ठरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

हिन्दी पद्य (१०)

श्रीकृष्ण लेकर पाञ्चजन्य सुदेवदत को पार्थ ले।
लेकर वृकोदर भीम भी निज पौड्रफूंकत कर-मले ॥१५॥

राजा युधिष्ठर ने अनन्तविजय लिया था हाथ में।
अरु घोष मणि-पुष्पक नकुल सहदेव के थे साथ में ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥१८॥

हिन्दी पद्य (११)

थे काशिराज महाधनुर्धर थे शिखण्डी वीर भी।
थे धृष्टद्युम्न विराट सात्यकि थे अजेय सुधीर भी ॥१७॥
थे द्रुपद सब सुत द्रौपदी के अरु सुभद्रा सुत सभी।
धृतराष्ट्र! निज निज शंख फूंके साथ हो सबने तभी ॥१८॥

मूल

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥१९॥

अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वाधार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥

हिन्दी पद्य (१२)

सुनि तुमल ध्वनि आकाश पृथ्वी भी हुई कम्पित महा ।
सुनि कौरवों का भी कलेजा तुरत फट जाना चहा ॥१९॥
यों युद्ध हित तैयार सारे कौरवों को देखकर ।
आता समय है निकट शस्त्र प्रहार का यह लेखकर ॥२०॥

मूल

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापयमेऽच्युत ॥२१॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योधव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

हिन्दी पद्य (१३)

धृतराष्ट्र! अर्जुन ने कहा श्रीकृष्ण से यों तड़फड़ा।
अच्युत! सु-रथ मम उभय सेना बीच ला-करदो खड़ा ॥२१॥

इस मध्य में मैं देखलूं रण की जिन्हें है कामना।
करना विकट संग्राम में जिनसे मुझे है सामना ॥२२॥

मूल

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्रसमागताः।
धार्तराष्ट्रस्यदुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥२३॥

हिन्दी पद्य (१४)

कैसे सुयोधन के समर में आज बचते प्राण हैं।
खो सत्यपथ दुर्बुद्धि से जो चाहते कल्याण हैं॥
उनको तनक मैं देखलू वे शूर हैं कैसे बली।
होगी मचानी बीच उनके खूब मुझको हलचली ॥२३॥

संजय उवाच—मूल

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्येस्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

संजयबोला–हिन्दी पद्य (१५)

धृतराष्ट्र ! संजय ने कहा जब पार्थ ने ऐसा कहा।
तब कृष्ण रथ लाये वहाँ देखा कहां क्या हो रहा ॥२४॥
फिर भीष्म द्रोण अनेक नृप को देख माधव ने कहा।
अर्जुन ! तनक तू देख कौरवदल जहां है जुट रहा ॥२५॥

मूल

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥२६॥
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥२७॥

हिन्दी पद्य (१६)

गुरु-वृद्ध-सुत आचार्य आदिक पार्थ ने देखे वहां।
विस्मित हुआ लड़ना मुझे होगा इन्हीं से क्या ! यहां ॥
प्रिय बान्धवों को देखते ही फिर गई मति भिन्न हो।
छाई प्रबल करुणा तुरत कहने लगा अति खिन्न हो ॥२७॥

अर्जुन उवाच—मूल

दृष्ट्वेमं स्वजनंकृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोम हर्षश्च जायते ॥२९॥
गाण्डीवं स्रंसतेहस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनु पश्यामिहत्वास्वजन माहवे॥३१॥

अर्जुन बोला—हिन्दी पद्य (१७)

प्रियदेख स्वजनों को यहां जो युद्ध के हित हैं खड़े ॥२८॥
हैं शिथिल मेरे गात्रहोते होंठ मुहँ सूखे पड़े ॥
रोमाञ्चभी होता तथा सारा वदन है कँप रहा ॥२९॥
गाण्डीव भी अब हाथ से नीचे चला जाता अहा॥

(१८)

सर्वत्र हो इस देह में है दाह अतिशय हो रहा।
:. रह नहीं सकता खड़ा मन खा रहा चक्कर महा ॥३०॥

केशव ! सभी विपरीत लक्षण देखता हूं मैं यहां।
निज बान्धवों को मारकर कल्याण होता है कहां ॥३१॥

मूल

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३

हिं० पद्य १६

मैं चाहता नहिं विजय सुख या राजसी यह सम्पदा।
गोविन्द ! किसके पास रहती चञ्चला थिर हो सदा ॥३३॥
मैं चाहता था राज्य सुख सम्पति सब जिनके लिये।
वे प्राण की तज आशको प्रस्तुत यहां रण के लिये ॥३३॥

मूल

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसंबन्धिनस्तथा ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्यहेतोः किं नु महीकृते॥३५॥

हिं० पद्य २०

आचार्य, बूढे, श्वशुर, साले, मित्र, मामा हैं खड़े।
सुत, पौत्र तक भी शस्त्र युत तज प्राण आशा हैं खड़े॥
है तुच्छही त्रैलोक्य तक का राज्य भी इनके मरे।
भूलोक हित फिर युद्ध कर मारूं इन्हें कैसे हरे?॥३५॥

मूल

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः काप्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः॥३६॥
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥३७॥

हिं० पद्य २१

हित-सिद्ध होगा कौनसा जब स्वजन मारे जायगे।
ये आततायी हैं यदपि पर पाप ही हम पायेंगे॥३६॥

इस हेतु इन प्रिय बान्धवों को मारना समुचित नहीं ।
माधव ! सुखी हम मार कर इनको भला होंगे कहीं ॥३७॥

मूल

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभि भवत्युत ॥४०॥

हिं० पद्य २२

क्यों लोभ वशनिर्बुद्धियोंको दे दिखाई पापहा !
होता कुलक्षय दोष मित्र-द्रोह का पातक महा ॥३८॥
होता कुलक्षय से सनातन धर्म कुल का नष्ट है ॥३९॥
कुल, पाप मय होता तभी जब धर्म होता भ्रष्ट है ॥४०॥

मूल

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥४१॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४

हिं० पद्य २३

हों स्त्रियांव्यभिचार-रत जहँ पाप की ही वृत्ति है।
वार्ष्णेय! होती वर्णसंकर की तभी उतपत्ति है ॥४१॥

हैं वर्णसंकर भेजते निश्चय नरक में कुल सभी।
पिण्डादितर्पण लुप्तहोते पतित होते पितर भी ॥४२॥

मूल

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्चशाश्वताः ॥३

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

हिं० पद्य २४

होते पुरातन जाति अरु कुल-धर्म फिरतो नष्ट ही।
कुल घातकों के वर्णसंकरदोष का फल हैं यही ॥४३॥
मैंने सुना है हे प्रभो ! कुल धर्म जिनके नष्ट हैं।
वे नित नरक में वास करते धर्म से जो भ्रष्ट हैं ॥४४॥

मूल

अहोबतमहत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

हिं० पद्य २५

मैं चाहता था राज्य-सुख-हित प्रिय जनो को मारना ।
देखो भला कैसी बुरी थी पाप मय यह धारना ॥४५॥

उत्तम यही निःशस्त्र हो प्रतिकार करना छोड़दूं।
कौरव मुझे दें मार रण में शस्त्र से मुहँ मोड़दूं ॥४६॥

संजय—उवाच—मूल

एवमुक्त्वाऽर्जुन संख्येरथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोक संविग्नमानसः ॥४७॥

संजय बोला— हिं० पद्य. २६

अर्जुन कहा माधव! भला रण-सिन्धु कैसे पार हो।
हिंसा-महीधर ग्राह जिसमें शोक रूपी ज्वार हो॥
गाण्डीव कर से फेंक कर फिर शोक-सागर मग्न हो।
उपभाग रथ में जा कहा रण-मन्त्र मेरा भग्न हो ॥४७॥

ॐ तत्सदिति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णाऽर्जुन सम्वादे अर्जुन-विषाद योगो नाम प्रथमोऽध्याय ॥१॥

॥ अथ द्वितीयोअध्याय प्रारम्भ ॥

श्री परमात्ने नमः

संजय—उवाच—मूल

तं तथा कृपयाविष्टमश्रूपूर्णा कुलेक्षणाम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

श्री भगवानु वाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

संजयबोला-हिं० पद्य (१)

थे व्यथित करुणापूर्ण जलसे नेत्र अर्जुन के भरे ।
भगवानने देखा ! कहा फिर मोह यह जिससे हरे ॥१॥

आया कहांसे मोह यह इस विकट संकट कालमें ।
हैं आर्य-जन फसते नही ऐसे कठिन भ्रम-जालमें ॥२॥

मूल

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठपरन्तप ॥३॥

हिं० पद्य-(३)

दुष्कीर्तिकारी मोह से उन्नति न होती है कहीं।
हे पार्थ ! ऐसा भीरुपन देता तुझे शोभा नहीं ॥
तज क्षुद्र दुर्बलता हृदय की युद्ध-हित तैयार हो।
हे ! हे !! परन्तप उठ खड़े हो युद्ध-सागर पार हो ॥३॥

अर्जुन उवाच—मूल

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥
गुरूनहत्वा हि महानुभावान्,
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामान्स्तु गुरूनिहैव,
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

अर्जुन बोला–हिं० पद्य (३)

हे शत्रुनाशन ! कृष्ण !! मधुसूदन कहो कैसे भला ।
वर पूज्य भीषम द्रौण पर मैं बाण सकता हूं चला ॥४॥
वरु भीख पर निर्वाह करना है भला इस लोक में ।
पर गुरु जनों को मारकर पड़ना बुरा है शोक में ॥

(४)

यदि अर्थ लोलुप भी हमारेहों महा गुरुजन सभी ।
फिर भी नहीं मैं चाहता हा ! मारना उनको कभी ॥
क्या ! मारकर निजबान्धवों को फिर यहीं पर भोगना ।
है रक्त-मिश्रित भोगकी कैसी बुरी आयोजना ॥५॥

मूल

न चैतद्विद्मः कतरन्नोगरीयो,
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेवहत्वा न जिजीविषाम,
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

हिं० पद्य ५

होगी पराजय या विजय आता नहीं कुछ ध्यान में।
आता नहीं किसमें भलाई है हमारे ज्ञान में॥
वे आजुटे हैं युद्ध में कौरव जिन्हें मैं मारकर।
जीना नहीं फिर चाहता रहना भला है हारकर॥६॥

मूल

कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः,
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितंब्रूहि तन्मे,
शिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वां प्रपन्नम्॥७॥

हिं० पद्य ६

है डूब करुणा-सिन्धु में निज ज्ञान मैंने खोदिया।
हा! ज्ञानहर इस मोह ने कर्त्तव्य पथ से च्युत किया॥
इस हेतु मैं अब पूछता हूं उचित मार्ग बताइये।
मैं शिष्य आया हूं शरणमें आपकी समझाइये॥७॥

मूल

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्,
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं,
राज्यंसुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

हिं० पद्य ७

इस विश्व के सम्पत्तिशाली राज्य को पाऊं न क्यों ।
या स्वर्ग भर का एक स्वामी शीघ्र बनजाऊं न क्यों ॥
पर एक भी साधन नहीं है दीखता ऐसा हरे !
जो इन्द्रियों के तप्तकारी शोक को मर्दन करे ॥८॥

संजय—उवाच—मूल

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वातूष्णीं बभूवह ॥९॥
तमुवाचहृषीकेशः प्रहासन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

संजय बोला— हिं० पद्य ८

धृतराष्ट्र ! संजय ने कहा यों पार्थ कहकर रह गया।
हे ! हे !! जनार्दन ! मैं न लड़ने योग्य हूं अब रहगया ।।९।।

धृतराष्ट्र ! अर्जुन उभय सेना बीच बैठा खिन्न था ।
श्री कृष्ण तब बोले ललित मुख पर हंसी का चिन्ह था ।।१०।

श्री भगवानुवाच मूल

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।११।

हिं० पद्य ९

तू कर रहा है शोकजिनका शोक यह अनुचित महा ।
फिर ज्ञान की बातें सभी कैसी बताते हो अहा ! ।।
ये प्राण जायें या रहें यह सोचना ही व्यर्थ है ।
ज्ञानीपुरुष के सामने इसका न कुछ भी अर्थ है ।।११।।

मूल

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

देहिनोऽस्मिन्यथादेहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथादेहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

हिं० पद्य १०

मैं तुम सभी नरपति न थे पहिले नहीं सम्भव कभी ।
लेंगे न जन्म भविष्य में कोई न कह सकता कभी ॥१२॥

ज्यों देहधारी भोगते बचपन जवानी अरु जरा ।
त्यों देह होती प्राप्त जाने ज्ञान से जो है भरा ॥१३॥

मूल

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्या स्तांस्तितिक्षस्व भारत१४

हिं० पद्य–११

शीतोष्ण या सुख दुःखदायी जो यहां संयोग हैं।
जोइन्द्रियों से बाह्यसृष्टि पदार्थ के संभोग हैं॥
होते वही उत्पन्न हैं होता उन्ही का नाश भी।
भारत! उन्हें सहलो न आवे शोक जिससे पास भी॥१४॥

मूल

यंहि न व्यथयन्त्येतेपुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखंधीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१५॥

हिं० पद्य १२

नर श्रेष्ठ जो ज्ञानी पुरुष सुखदुःख सम हैं जानते।
दुस्सह व्यथा को भी नहीं कुछ भी व्यथा जो मानते॥
पाते वही अमरत्व पदको हैं नहीं संशय यहां।
है कौनसी ही सिद्धिजो आती न समदर्शी जहां॥१५॥

मूल

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥१६॥

हिं० पद्य १३

रहता सदा अस्तित्व सत् का और असत् अभाव है ।
यों ज्ञानियोंने सत् असत् का करदिया विलगाव है ॥
अतएव आत्मासत्वरूपी का न होता नाश है ।
वश देह असत् स्वरूप का होता सदा ही नाश है ॥१६॥

मूल

अविनाशितु तद्विद्धि ये न सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्त्तु मर्हति ॥१७॥
अन्तवन्त इमेदेहा नित्यस्योक्ता: शरीरिण: ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्यु ध्यस्व भारत ॥१८॥

हिं० पद्य १४

आत्मा अमर है देह–स्वामी लोक वेद प्रसिद्ध है ।
घर–देह उसका नाशवान अनित्य सबविधि सिद्ध है ॥१७॥
इस अमर आत्मा की कहो या देह नश्वर के लिये ।
है शोक करना व्यर्थ भारत ! उठ चलो रण के लिये ॥१८॥

मूल

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनंमन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।१९

न जायते म्रियते वा कदाचिन्,
नायं भूत्वाभविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

वेदा विनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्तिकम् ॥२१॥

हिं० पद्य १५

है मारती आत्मा न कोई है उसी को मारता ।
आत्मा न मरती मारती यह ईश्वरीय उदारता ॥१६॥
आत्मा न लेती जन्म अथवा है कभी मरती नहीं ।
इक बार होकर फिर न हो होता भला ऐसा कहीं ॥

(१६)

अजनित्यशाश्वत अरु पुरातन वस इसे तुम जानलो।
देहान्त यदि होजाय तो मुर्दा न इसको मानलो ॥२०॥

देही अमर है देह नश्वर जानते तत्त्वज्ञ हैं।
वे मारते मरते नहीं जो विज्ञ हैं मर्मज्ञ हैं ॥२१॥

मूल

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानिगृह्णाति नरोऽपराणि।
तथाशरीराणिविहाय जीर्णान्,
यन्यानिसंयातिनवानिदेही ॥२२॥

नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥२३॥

हिं० पद्य १७

तज जीर्ण वस्त्रों को यथा धारण मनुज करते नया।
देही पुराना देह तजत्यों बदल लेता है नया ॥२२॥

आत्मा न कटता शस्त्र से जलता न पावक से कभी।
शोषण न होता वायु से गलता न जल से है कभी ॥२३॥

मूल

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसी ॥२५॥

हिं० पद्य १८

कटती न जलती भीगती शोषण न होती है कभी।
वह नित्यथिर है सर्वव्यापी अचल और अनन्त भी ॥२४॥
अज निर्विकार अचिन्त्य अव्यक्त जिसको है कहा।
क्या ! उचित तुमको सोच करना है उसी हित यों अहा॥२५॥

मूल

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

हिं० पद्य १९

यदि जन्मता मरता सदा है बात ऐसी मानलो।
तो भी महाबाहो न करना शोक ऐसा जानलो ॥२६॥
है जन्म पीछे मृत्यु निश्चित मृत्यु पीछे जन्म है।
जो जन्मता मरता वही मरता सो लेता जन्म है ॥२७॥

मूल

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानिभारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

हिं० पद्य २०

सब भूत ही आरम्भ में होते सदा अव्यक्त हैं।
हैं मध्य में वे व्यक्त होते मरण पर अव्यक्त हैं॥
सब की दशा है एक क्या होता न इसका अर्थ है।
भारत भला फिर शोक तेरा क्या न करना व्यर्थ है ॥२८॥

मूल

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन,
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

हिं० पद्य २९

है देखता कोई इसे अनुपम अनोखा जानकर ।
करते कथन हैं इस विषय में कुछ अलौकिक मानकर ॥
सुनते तथा कुछ हैं इसे आश्चर्य लीला जानते ।
इनमें बहुत ही कम इसे हैं तत्वतः पहचानते ॥२९॥

मूल

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि नत्वं शोचितुमर्हसि ॥३०।
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितु मर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते३१

हिं० पद्य २२

सब प्राणियों की देह में देही निरापद है सदा।
करना न चहिये शोक इसको अमर जानो सर्वदा ॥३०॥

होना निरुत्साहित नहीं कहता तुम्हारा धर्म है।
कुछ धर्म-संगत युद्ध से बढ़ कर न क्षत्रिय धर्म है ॥३१॥

मूल

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ३२
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥३३

हिं० पद्य २३

हे पार्थ! है यह युद्ध मानों स्वर्ग पट ही खुलगया।
है भाग्यशाली क्षत्रियों के हित सु-अवसर यह नया ॥३२॥

अतएव तुमने धर्म के अनुकूल युद्ध नहीं किया।
तो समझलो निज धर्म तज सिर पाप-पुञ्ज चढ़ा लिया ॥३३॥

मूल

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययां।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

हिं० पद्य ३४

इतनी नहीं दुष्कीर्ति की लग जायगी यह कालिमा।
जो सर्वथा देगी मिटा पूर्णेन्दु सी यह लालिमा॥
दुष्कीर्ति गायी जायगी तेरी सदा इस लोक में।
फिर तो पड़ोगे मृत्यु से बढ़कर अयशके शोकमें ॥३४॥

मूल

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥३५
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥

हिं० पद्य ३५

डरकर विमुख रण से हुआ यों शूर सब कह पायँगे।
बहुमान्यतेरी योग्यता कम समझने लग जायँगे ॥३५॥

योंही अनेकोंव्यंग शातें शत्रु तेरे विषय में ।
कहि कहि तुम्हें धिक्कार देंगे दुखित होंगे हृदय में ॥३६॥

मूल

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥३८॥

हिं० पद्य २६

मर सुर-पुरी जाओ नहीं तो राज्य ले भोगो मही ।
अच्छा यही अर्जुन ! उठो निश्चय करो तुम युद्ध ही ॥३७॥
सुखदुःख लाभालाभ जय अरु हार को समसानकर ।
निश्चय करो तुम युद्ध भारत कठिन प्रण अस ठानकर ॥३८॥

मूल

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ३९

हि० पद्य २७

यह सांख्य मत अनुसार तुमको बुद्धि बतलाई गई।
हे पार्थसुनलो मैं सुनाता बुद्धि तुमको इक नई॥
तुम कर्म बन्धन मुक्त होंगे युक्त हो जिस ज्ञान से।
यह कर्म-योग सु-मन्त्र कहता हूं सुनोतुम ध्यानसे ॥३९॥

मूल

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ४०

हि० पद्य २८

आरम्भकृतशुभकर्म का इसमें न होता अन्त है।
आते न विघ्न भविष्य में इस योग का सिद्धान्त है॥
इस धर्म का पालन मनुज कुछ अंश में भी यदि करें।
रक्षा सदा होती रहे सब कठिन विपदायें टरें ॥४०॥

मूल

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ४१

हिं० पद्य २९

एकाग्र निश्चय बुद्धि होनी चाहिये इस धर्म में।
फिर जान कुरुनन्दन! पड़े अन्तर सुकर्म अकर्म में॥
होती न निश्चयता जिन्हें इस भांति अपनी बुद्धि को।
खाते वही चक्कर कहैं क्या बात उस दुर्बुद्धि की॥४१॥

मूल

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥४३॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

हिं० पद्य- ३०

हे पार्थ! केवल फल-श्रुति में प्रेम रखना भूल है।
याहै नहीं अतिरिक्त इसके जो कहै निर्मूल है॥४२॥

शुभ कर्म आदिक यज्ञ से कहना महा अत्युक्ति है।
मिलता सदा है जन्म अरु मिलती सदा ही भुक्ति है॥

(३१)

कामी पुरुष जो चाहते बस स्वर्ग की है सम्पदा।
या भोग अरु ऐश्वर्य में जो मस्त रहते हैं सदा॥४३॥
रहती न उनकी बुद्धि थिर वे जान सकते हैं नहीं।
वह कार्य और अकार्य को पहचान सकते हैं नहीं॥४४॥

मूल

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

हिं० पद्य ३२

अर्जुन! भरे हैं वेद यों त्रैगुण्य विषयों से सभी।
तू मानकर उपदेश निस्त्रैगुण्य हो जाओ अभी॥
सुखदुःख द्वन्द्वों से रहित सत्त्वस्थ नित्य अतीत हो।
तज मोह-ममता आत्मनिष्ठ बनो नहीं भयभीत हो॥४५॥

मूल

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

हिं० पद्य ३३

चहुँओर से जो देश जलप्लावित हुआ हो फिर वहां ।
जल-कूप उसके काम में है तनिक भी आता कहां ॥
है ठीक उतना ही प्रयोजन ब्राह्मणों को वेद का ।
यदि ज्ञान करलें प्राप्त तो फिर प्रश्न क्या मत-भेद का ॥४६॥

मूल

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

हिं० पद्य ३४

तुमको मिला बस कर्म करने मात्र का अधिकार है।
फल प्राप्त होगा या नहीं यह सोचना बेकार है॥

हो सिद्ध मेरे इष्ट की मन धार ऐसी धारना।
है कर्म करना व्यर्थ चहिये कामना को मारना ॥४७॥

मूल

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते

हिं० पद्य ३५

फल लाभचिन्ता चाह त्यागो त्यागदो दुर्बुद्धि को।
योगस्थ होकर कर्मकर हो प्राप्त जिससे वृद्धि को॥
अर्जुन करो तुम कर्म फलकी चाहचिन्ता छोडदो।
मद मोह माया वासना के जाल को तुम तोडदो ॥४८॥

मूल

दूरेण ह्यवरं कर्म बुध्दियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

हिं० पद्य ३६

सम-भाव युक्त सुबुद्धि ही है श्रेष्ठतर अति कर्मसे।
उसकी शरणलो हे धनंजय! कह रहा मैं धर्मसे॥

फल हेतु जो जन कर्म करते वे महाही दीन हैं।
होते महा ही कृपण हैं वह नीच सबविधि हीन है ॥४९॥

मूल

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्वयोगः कर्मसुकौशलम् ॥५०।

हिं० पद्य ३७

इस लोक में जो साम्यबुद्धि प्रकाश से ही युक्त हैं।
वह पाप-पुण्य विचार से रहते सदाही मुक्त हैं।
अतएव अर्जुन! योग की जो शरण लो आनँदमयी ॥
है कर्म करने की कुशलता कर्मयोग कहीं गयीं ॥५०॥

मूल

कर्मजं बुद्धियुक्ताहि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ५१
यदा ते मोह कलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥५२॥

हिं० पद्य ३८

सम बुद्धि युत ज्ञानि पुरुष जो कर्म-फल हैं त्यागते।
पाते परम पद जन्म बन्धन दुःख उनके भागते ॥५१॥
जब बुद्धि तेरी पार होगी मोह के आवरण से।
होगे विरक्त तबही सुना जो और थोड़े श्रवण से ॥५२॥

मूल

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचलाबुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्यकेशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥५४

हिं० पद्य ३९

हो व्यथित श्रुतिके वाक्य से तव बुद्धि में भ्रम व्याप्त है।
जब बुद्धि सुस्थिर दृढ़ बने तब योग होता प्राप्त है ॥५३॥

अर्जुन उवाच

फिर पार्थने पूछा कहो थिरप्रज्ञ कहते हैं किसे।
यह बोलता चलता तथा है बैठता किस भाँति से ॥५४॥

श्री भगवानुवाच मूल

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

हिं० पद्य ४०

हे पार्थ जो लोलुप हुए रहते सदा वह अज्ञ हैं।
सन्तुष्ट अपने आपमें रहते वही स्थितप्रज्ञ हैं ॥५५॥
दुख में दुखी होते न जो आसक्त सुखमें भी नहीं।
भय प्रीति अथवा क्रोध में थिरबुद्धि हैं फंसते नहीं ॥५६॥

मूल

यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टितस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

हिं० पद्य ४१

जिनके लिये शुभ-अशुभ फल सम मान अरु अपमान है ।
जिनके लिये सुख दुःख हर्ष-विषाद एक समान है ॥
है बस वही स्थितप्रज्ञमुनि इसमें न संशय जानना ।
थिर बुद्धि उनकी है सभी विधि सत्य इसको मानना ॥५७॥

मूल

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५८

हिं० पद्य ४२

ज्यों खींचकरके मोडकर के कूर्म अङ्ग सिकोड़ते ।
त्यों देहधारी इन्द्रियों को हैं विषय से मोड़ते ॥
हो जाय निग्रह इन्द्रियों का जब यथोचित गति से ।
तब होगई समबुद्धि जानो कह रहा यह नीति से ॥५८॥

मूल

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

हिं० पद्य ४३

उपवास से यदि खिच गई हों इन्द्रिया सुख विषयसे ।
तोभी न उनकी चाँट जाती सरस उनके हृदयसे ॥
हो ज्ञान जब पर ब्रह्म का यह चांट जाये सर्वथा ।
होते विसर्जन विषय भी सब चाह मिट जायें तथा ॥५६॥

मूल

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्यविपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

हिं० पद्य ४४

कौन्तेय ! केवल इन्द्रियों का दमन जिनका ध्येय है ।
उनको कभी मिलता नहीं इन्द्रिय दमन का श्रेय है ॥
ये इन्द्रियां हैं खीचतीं सब को दमन की ओर से ।
चाहे जिधर करदें उधर निज प्रखरता के जोर से ॥६०॥

मूल

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

हिं० पद्य ४५

अतएव करना पूर्ण निग्रह इन्द्रियों का चाहिये ।
हो मत्परायण योग युक्तसदा विचरना चाहिये ॥
जो इन्द्रियों का यों दमन कर होगया स्वाधीन है ।
समबुद्धि उसका होगई यों योग में जो लीन है ॥६१॥

मूल

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ६२

हिं० पद्य ४६

ज्यों ज्यों मनुज करते अधिक चिन्तन विषय की चाह में।
त्यों त्यों अधिक आसक्ति बढ़ती वासना की राह में ॥
आसक्ति में होती सहज हो काम की दुर्भावना ।
यदि काम में हो विघ्न तो है क्रोध की संभावना ॥६२॥

मूल

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति६३

हि० पद्य– ४७

जब क्रोध होता है तभी सु-विवेक होता नष्ट है ।
संशय नहीं अविवेक से स्मृति शीघ्र होती भ्रष्ट हैं ॥
स्मृति भ्रष्ट होने से सहज ही बुद्धि होती भ्रष्ट है ।
फिर बुद्धि के ही नाश से सर्वस्व होता नष्ट है ॥६३॥

मूल

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

हिं० पद्य ४८

पर होगया हो खूब अन्तः करण जिनका हाथ में ।
जो राग-द्वेष विहीन हो रहकर विषय के साथमें ॥
रहते सदैव प्रसन्न वह होता दुखों का अन्त है ।
कर्त्ता सदा वह स्वच्छता समबुद्धि को अत्यन्त है ॥६४॥

मूल

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतःसुखम् ॥

हिं० पद्य ४६

उपरोक्त योग विधान से होते नहीं जो युक्त हैं।
रहती नहीं उनकी ठिकाने बुद्धि जो भ्रम युक्त हैं ॥६५॥
बिन बुद्धि मिलती शान्ति क्या! बिन शान्ति मिलता सुख कहीं।
हे पार्थ ? इन्द्रियदमनबिन है बुद्धि सम होती नहीं ॥६६॥

मूल

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८

हिं० पद्य ५०

वह पवन झोंके नावको हैं खींचते जलमध्य ज्यों।
मन इन्द्रियों के फेर में पड़ बुद्धि करता क्षीणत्यों ॥६७॥

होवे न इन्द्रिय दास जो है दूर विषयों से सभी।
समबुद्धि उसकी है महावाहो ! न डिगसकती कभी ॥६८॥

मूल

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः

हि० पद्य ५१

जबनिशिसभी हैं मानते तब जागते स्थितप्रज्ञ हैं।
जब जागते प्राणी सभीनिशि मानते तत्वज्ञ हैं ॥
इसहेतु इनकी मति सदा होती महा विपरीत है।
अन्तर यहां कैसाभला होता महान् प्रतीत है ॥६९॥

मूल

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं,
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,
सशान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

हिं० पद्य ५२

तजता न ज्यों मर्याद सागर भरत जल चहुं ओर से।
सरवर-नदी-नद-जलद-जल आते न कितने जोर से॥
जिस पुरुष में त्यों घुस गये हों विषय फिर भी शान्त हो।
है शान्ति सुख पाता वही रहता न कामी शान्त हो॥७०॥

मूल

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥७१
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

हिं० पद्य–५३

जो पुरुष तज आसक्ति यों निःस्पृह विचरते हैं यहीं।
सुख शान्ति पाते हैं सदा जो गर्व तज देते सही॥७१॥
हे पार्थ! ब्राह्मी स्थित यही है सुगम सीढ़ी मोक्ष की।
देती सदा मरणान्त पीछे ब्रह्म मय गति मोक्ष की॥७२॥

ॐ तत्सदिति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः (२)

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

हिं० पद्य १

तुमने बताया बुद्धि को ही श्रेष्ठतर जब कर्म से।
केशव ! मुझे फिर चाहते हो बाँधना क्यों कर्म से ॥१॥
ऐसा करो भाषण न जिसमें बुद्धि में भ्रम व्याप्त हो।
वह मार्ग निश्चय कर कहो कल्याण जिसमें प्राप्त हो ॥२॥

श्री भगवान उवाच मूल

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
नच संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

भगवान बोले हिं० पद्य २

हैं द्विविध निष्ठाएँ जगत में अनघ तुम हो सुन चुके ।
है ज्ञान सांख्यों के लिये अरु कर्म-योग सु-साधु के ॥३॥
होती नहीं नैष्कर्म्य प्राप्त न कर्म यदि आरंभ हो ।
कैसे मिलेगी सिद्धि यदि नहिकर्म का प्रारंभ हो ॥४॥

मूल

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

हिं० पद्य ३

कोई विना कुछ कर्म के क्षण भर रहे सम्भव नहीं ।
हो प्रकृति के गुण से विवश हो कौन कुछ करता नहीं ॥
अतएव तज आसक्ति को सब कर्म नित करता रहे ।
इस कर्मयोग सुयोग का पालन सदा करता रहे ॥५॥

मूल

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

हिं० पद्य ४

हैं वे महा ही मूढ़ जो कर्मेन्द्रियों को रोक के ।
रहते अहर्निश सोचते मनसे विषय में भोग के ॥
समबुद्धि बिन है इन्द्रियों को रोकना अर्जुन ! वृथा ।
पाखण्ड जो इसको कहें तो उचित ही है नहिं मृषा ॥६॥

मूल

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

हिं० पद्य ५

परयोग्यतर अरु श्रेष्ठतर हैं व्यक्ति अर्जुन ! वे सभी ।
जिनकी हुई हों इन्द्रियां वश डिग नहीं सकती कभी ॥

कर्मेन्द्रियों से कर्म करके जो न भोगासक्त हैं।
अन्तः करण वश होगया जो ब्रह्मपद आसक्त हैं ॥७॥

मूल

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥६॥

हिं० पद्य ६

है कर्म करना श्रेष्ठतर नहिं कर्म करने से कहीं।
तू कर्म कर जिसके बिना निर्वाह तन तक का नहीं ॥८॥
यज्ञार्थ कर्मों के सिवा अन्यान्य जितने कर्म हैं।
सब लोक बन्धन हैं यही कहते हमारे धर्म हैं॥

मूल

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

हि० पद्य ७

अतएव तुम करते चलो यज्ञार्थ कर्म विधान से।
करना फलाशा पर नहीं यह याद रखना ध्यान से ॥९॥
"विधि" ने प्रजा को यज्ञ के ही साथ रचकरके कहा।
हो वृद्धि-प्रद यह यज्ञ सबका नित ..रे मंगल महा ॥१०॥

मूल

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

हि० पद्य ८

शुभ यज्ञ से करते रहो संन्तुष्ट देवों को सदा।
वह देव-गण जिससे करें संन्तुष्ट तुमको सर्वदा॥
करते हुए सन्तुष्ट यों एक दूसरे को प्रेम से।
कल्याण करजो प्राप्त दोनों यज्ञ के शुभनेम से ॥११॥

मूल

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

हिं० पद्य ९

सन्तुष्ट हो सुर-गण करेंगे पूर्ण सब की कामना।
होगा नहीं करना तुम्हें दुःखादिकों का सामना॥
पाकर उन्हीं से भोग जो उनको बिना अर्पण किये।
वे भोगते हैं चौर हैं निश्चय समर्पण बिन किये॥१२॥

मूल

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥१३॥

हिं० पद्य १०

पर यज्ञ करने पर बचे जो कुछ उसे हैं भोगते।
वह मुक्त पापों से तुरत हो छूटते भव-रोगते॥
निज पेट की ही पूर्ति हित जो हैं पकाते अन्न को।
हैं वह अघी खाते समझलो पाप रूपी अन्नको॥१३॥

मूल

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरशमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

हिं० पद्य ११

हैं अन्न से उत्पन्न प्राणी मेघ देता अन्न है ।
वह मेघ मख से और मखभी कर्म से उत्पन्न है ॥१४॥
अतएव रहता यज्ञ में वह सर्वगत परब्रह्म है ।
उस कर्म सेही ब्रह्म अक्षर से हुआ परब्रह्म है ॥१५॥

मूल

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६।
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्म तृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

हिं० पद्य १२

आगे चलाते जो नहीं यों चक्र यज्ञ सुकर्म के ।
हैं पार्थ! जीवन कर्म उनके है वृथा विनधर्म के ॥१६॥

जो तृप्त अरु सन्तुष्ट रहते नित्य अपने आपमें ।
रहता उन्हें करना न कुछ तपते न वह त्रयतापमें ॥१७॥

मूल

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

हि० पद्य १३

चाहे करें वे कार्य कुछ चाहे करें कुछ भी नहीं ।
होगा न उनको लाभ कुछ भी हानी भी होगी नहीं ॥
रहता न उनका कार्य कुछ सब प्राणियों के बीच में ।
निर्द्वन्द्व हो रहते कभी पड़ते नहीं भव कीच में ॥१८॥

मूल

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

हि० पद्य १४

अतएव तज आसक्ति तुम कर्त्तव्य कर्म करो सदा।
हो विरत करते कार्य जो पाते परम–पद सर्वदा ॥१६॥
जनकादिने भी सिद्धि पायी कर्म कर सोचो हिये।
इस लोक संग्रह हेतु करना कर्म तुम को चाहिये ॥२०॥

मूल

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

हिं० पद्य १५

जो श्रेष्ठ जन करते वही करते सदा अन्यान्यभी।
उनके प्रदर्शित मार्गका अनुकरण करते हैं सभी ॥२१॥
करना मुझे त्रैलोक्य में हे पार्थ! कुछ भी है नहीं।
ऐसी अलभ्य न वस्तु है जो लभ्य है मुझको नहीं ॥२२॥

मूल

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

हिं० पद्य १६-१७

यह सृष्टि हो उत्पन्न कैसे मैं ही यदपि त्यागी बनूं।
निज हाथ से होवे प्रजाजन नष्ट मैं संकर बनूं ॥२३॥
आलस्य रत होकर सभी फिर कर्म करना छोड़कर।
सब बैठ जायेंगे निकम्मे कर्म से मुख मोड़कर ॥२४॥

मूल

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

हिं० पद्य १८

रहते निरत आसक्त अज्ञानी पुरुष ज्यों कर्म में।
व्यापार में व्यवहार में संसार में गृह कर्म में ॥

हे पार्थ ! त्यों ही ज्ञानियों को लोक संग्रह के लिये।
आसक्ति तज निर्द्वन्द्व होकर कर्म करना चाहिये ॥२५॥

मूल

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

हिं० पद्य १६

भ्रमहो नहीं अज्ञानियों को कर्मयदि ज्ञानी करें ।
अज्ञस्य मोह प्रसाद होवें दूर विपदायें टरें ॥२६॥
प्रेरित गुणों से प्रकृति के सब कर्म होते आप हैं।
मैं, तैं, किया कह मूर्ख करते व्यर्थ गर्व कलाप हैं ॥२७॥

मूल

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

हिं० पद्य २०

मैं भिन्न हूं गुण कर्म से यह भेद जो हैं जानते।
जो इन गुणों के खेल को सब भाँति हैं पहँचानते॥
होते नहीं आसक्त वह इनमें भलीविधि जानते।
गुण खेलते गुण साथ हैं यह चाल वह पहँचानते॥२८॥

मूल

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥२६॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगज्वरः॥३०॥

हिं० पद्य २१

जो इन गुणों के फेर में पड़ कर्म गुण आसक्त हैं।
विचला न दे समबुद्धि उनको जो विषय अनुरक्त हैं॥२६॥
अध्यात्म विधि से कर समर्पण सकल कर्मों को मुझे।
निश्चिन्त हो तज मोह तू कर युद्ध मैं कहता तुझे॥३०॥

मूल

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ३१
येत्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

हि० पद्य ३२

श्रद्धालु जन जो नित्य चलते इस बताये मार्गपर ।
वे कर्म बन्धन मुक्त हो रखते न दृष्टि कुमार्गपर ॥३१॥
पर श्रमित दोष-दृष्टि से जो हो रहे पथ भ्रष्ट हैं ।
वे मूढ़ बुद्धि विवेक हीन अवश्य होते नष्ट हैं ॥३२॥

मूल

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

हिं० पद्य २३

चलते सभी प्राणी पुरुष 'ज्ञानी प्रकृति अनुसार हैं।
हठ-बल वशमें न करते इन्द्रियों को यह सभी बेकार हैं ॥३३॥
सब इन्द्रियों को प्रकृति से ही प्राप्त राग द्वेश हैं।
होता न इनके वश कभी ये शत्रु देते क्लेश हैं ॥३४॥

मूल

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मेनिधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

हिं० पद्य २४

है दोष-युत निज धर्म जो पर-धर्म से उत्तम महा।
वह स्वधर्म हो दुःखदभला पर-धर्म ही में भयमहा ॥
निज धर्म-पथ की मृत्यु भी कल्याणकर होता सदा।
पर-धर्म होता है भयंकर प्रखर कांटों से लदा ॥३५॥

मूल

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७

हिं० पद्य २५

इच्छा रहित भी मनुज करते पाप को प्रेरक कहो ।
है जान पड़ता कर रहे वह पाप सब लाचार हो ॥३६॥

तब भगवान कहनेलगे

है क्रोध एवं काम ही पापीमहा पेटू महा ।
उत्तपत्ति इनकी है रजोगुण से कराते पाप हा ! ॥३७॥

मूल

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

हिं० पद्य २६

ज्यों धूम से पावक ढका हो धूल से दर्पण ढके ।
त्यों गर्भ झिल्ली से ढका इनसे सभी त्यों हैं ढके ॥३८॥
यह काम रूपी नित्य अतृप्त वैरी अग्नि है ।
है ज्ञान ज्ञाता का ढका कौन्तेय ! यह यह वह्नि है ॥३९॥

मूल

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

हिं० पद्य २७

मन बुद्धि अरु सब इन्द्रियां घर तुल्य हैं इसके लिये ।
इनके सहारे ज्ञान ढक कर मनुज को फिरता लिये ॥४०॥
अतएव भारत काम काही प्रथम तुम संयम करो ।
इस ज्ञान अरु विज्ञान नाशी पापि का जीवन हरो ॥४१॥

मूल

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

हिं० पद्य २८

दे–हादि के तो इन्द्रियां उनके परे मन को कहा ।
उसके परे है बुद्धि जिसके परे आत्मा महा ॥४२॥
पहँचान आत्मा एक अपने आपको मानो यही ।
उस काम रूपी शत्रु को मारो महाबाहो सही ॥४३॥

ॐ तत्सदिति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

मूल

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२॥

हिं० पद्य १

इस नित्य योग सनातनी को सूर्य से मैंने कहा ।
उनसे सुना मनुने तथा इक्ष्वाकु से मनुने कहा ॥१॥
राजर्षियों ने प्राप्त कर वह योग जो पर्याप्त था ।
सो काल वश जाता रहा जो योग लोक व्याप्त था ॥२॥

मूल

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

हिं० पद्य २

मैंने पुरातन कर्म-योग सुयोग को तुझ से कहा ।
यह है विचित्र रहस्य इसको जान तू उत्तम महा ॥
इस गूढ़ गुप्त रहस्य को मैंने बताया है तुझे।
प्रिय-भक्त मेरा प्रिय सखा था उचित ही कहना मुझे ॥३॥

अर्जुन उवाच मूल

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

श्री भगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥५॥

अर्जुनबोला-हिं० पद्य ३

तुमने लिया है जन्म अब है सूर्य पहिले से यहां ।
कैसे भला विश्वास हो तुमने कहा था कब कहां ॥४॥

तब भगवान कहनेलगे

हम तुम अनेकों जन्म धारण कर चुके अर्जुन यहीं ।
मैं जानता हूं सब परंतप जानते तुम हो नहीं ॥५॥

मूल

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥६॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

हिं० पद्य ४

मैं प्राणियों का ईश अविकारी अजन्मा हूं सदा ।
हूं जन्म माया से स्वयं निज प्रकृति में लेता सदा ॥६॥
हो क्षीण जब जब धर्म भाग अधर्म है बढ़ना यहां ।
तब तब स्वयं मैं जन्म ले अवतीर्ण होता हूं यहां ॥७॥

मूल

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

हिं० पद्य ५

मैं दुष्ट दानव दल दलन अरु साधु जन रक्षार्थ हो ।
युग युग यहां अवतीर्ण होता हूं स्वयं धर्मार्थ ही ॥८॥
इस दिव्य जन्म रहस्य को जो जानता कहता तुझे ।
देहान्त पीछे जन्म बन्धन मुक्त हो मिलता मुझे ॥९॥

मूल

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

हिं० पद्य ६

भय प्रीति क्रोध विहीन आश्रित हो मुझी में चित लगा ।
हैं मिल गये मुझमें अनेकों जानकर अपना सगा ॥१०॥

भजते मुझे जिस भाँति फल अनुकूल देता हूं उन्हें।
आवें किसी भी ओर से पर पार्थ! मिलता हूं उन्हे ॥११॥

मूल

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

हि० पद्य ७

हैं सुर गणों को पूजते जो चाहते फल लोक में।
हैं कर्मफल वह प्राप्त होते शीघ्र इस नर लोक में ॥१२॥
गुण कर्म के अनकूल वर्ण-विभाग हैं मैंने किये।
कर्त्ता अकर्ता मैं स्वयं सोचो विचारो तुम हिये ॥१३॥

मूल

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

हिं० पद्य ८

मैं कर्म फल इच्छा रहित हूं कर्म बन्धन मुक्त हूं ।
जो मुक्त हों वह जानलें मैं त्रिगुण से अतिरिक्त हूं ॥१४॥
यह जानकर ही कर्म पूर्व मुमुक्षुओं तक ने किया ।
अतएव कर्म करो जिन्हें था पूर्वजों ने भी किया ॥१५॥

मूल

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्मप्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

हिं० पद्य ९

क्या कर्म और अकर्म हैं रहते सुबुध भ्रम युक्त हो ।
शुभ कर्म यह तुम जान जिसको पापबन्धन मुक्त हो ॥१६॥

है कर्म गति अति गहन फिर भी जानलो है कर्म क्या।
कहते विकर्म किसे समझ हे पार्थ! और अकर्म क्या ॥१७॥

मूल

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥
यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥

हिं० पद्य १०

जो कर्म बीच अकर्म और अकर्म में जो कर्म को।
हैं देखते करते वही ज्ञानी सुबुध सब कर्म को ॥१८॥
उद्योग-फल इच्छा रहित हो कर्म जो करते रहें।
हैं सुबुध जो ज्ञानाग्नि से देते जला सब कर्म ही ॥१९॥

मूल

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥२०॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

हिं० पद्य ११

तज कर्म फल की आश जो रहते सदा ही तृप्त हैं ।
वह कर्म करते हैं यदपी फिर भी सदा निर्लिप्त हैं ॥२०॥
निष्काम इन्द्रिय निग्रही जो मुक्त गैरस्नेह से ।
बनते न भागी पाप के वह कर्म करके देह से ॥२१॥

मूल

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

हिं० पद्य १२

जोहो अनिच्छा प्राप्ति में सन्तुष्ट निर्मत्सर तथा ।
निर्द्वन्द्व सिद्धि असिद्धि को सम मानते जो सर्वथा ॥
वह पुरुष करके कर्म भी होते न बाधित कर्म से ।
होते नहीं वह कर्म फल से बद्ध धर्म अधर्म से ॥२२॥

मूल

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

हिं० पद्य २३

संग-राग-द्वेष विहीन हो इस योग से जो युक्त हैं ।
वह कर्म सब यज्ञार्थ करते कर्म बन्धनमुक्त हैं ॥
जो कर्म करके कर्मबन्धन मुक्त रहते हैं सदा ।
वह मोक्ष-पद हैं प्राप्त करते यज्ञ करके सर्वदा ॥२३॥

मूल

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

हिं० पद्य २४

है स्रुवादिक ब्रह्म हवि का द्रव्य भी है ब्रह्म ही ।
ब्रह्माग्नि में जो हवन करता जानता है ब्रह्म ही ॥

हैं ब्रह्ममय सब कर्म जिसकी बुद्धि में यह आगया ।
पाया उसी ने ब्रह्मको समझो परम पद पागया ॥२४॥

मूल

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

हिं० पद्य १५

देवार्थ हैं कुछ कर्म योगी नेम करते यज्ञ का ।
ब्रह्माग्नि में कुछ यज्ञ से ही यजन करते यज्ञ का ॥२५॥
कुछ लोग करते होम संयम अग्निमें श्रोत्रादि का ।
हैं हवन करते अग्निमें इन्द्रिय विषय शब्दादि का ॥२६॥

मूल

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

हिं० पद्य १६

कुछ लोग इन्द्रिय प्राण कर्मों को जलाते ज्ञान से ।
कर आत्म संयम अग्नि को प्रज्वलितइंधन ध्यानसे ॥२७॥
भीषम व्रती यति नित्यप्रति करते विविधि विधि यज्ञ हैं।
तप योग ज्ञान सुद्रव्य अरु स्वाध्याय रूपी यज्ञ हैं ॥२८॥

मूल

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२६॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

हिं० पद्य १७

कुछ रोक प्राणायाम में द्रुत वेग प्राण अपान का ।
हैं हवन करते प्राण, बीच अपान उसमें प्राण का ॥२६॥

कुछ लोग नियताहार हो हैं होम की करते क्रिया ।
हैं हवन प्राणों बीच प्राणो का सदा करते किया ॥३०॥

मूल

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१

हिं० पद्य १८

जो यज्ञ वेत्ता हैं तथा जिनके कटे अघ रोग हैं।
जो यज्ञ के अवशिष्ट अमृत भोग करते भोग हैं॥
कुरुश्रेष्ट! होते लीन हैं वह ब्रह्ममें संशय नहीं ।
विन यज्ञ तो पर-लोक क्या! इह लोक तक बनता नहीं ॥३१॥

मूल

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥३२॥

हि० पद्य १६

यों ब्रह्म मुख में पार्थ ! होते नित्य कितने यज्ञ हैं ।
तुम जानलो यह कर्म से उत्पन्न होते यज्ञ हैं ॥
निष्कर्म यज्ञ विधान को जब जान लोगे तुम सभी।
तब मुक्त होंगे कर्म बन्धन छूट जायेंगे सभी ॥३२॥

मूल

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

हि० पद्य २०

है द्रव्य मय मख से परंतप ! ज्ञान-मख उत्तम कहीं ।
सब कर्म होते ज्ञान हित जिसके परे कुछ है नहीं ॥३३॥
नत-शिर तथा सेवादि करके प्राप्त करलो तुम उसे ।
देंगे तुम्हें उपदेश गुरुजन ज्ञानका समझो उसे ॥३४॥

मूल

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।।३५।।
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।।३६।।

हिं० पद्य २१

जिस ज्ञान को पाकर न होगा मोह पाण्डव फिर कभी ।
तुझ में तथा मुझ में दिखाई एक सम देंगे सभी ।।३५।।
यदि पापियों में भी महापापी किसी को मानलो ।
तो ज्ञान से हो पाप सागर पार होगा जानलो ।।३६।।

मूल

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मासात्कुरुते तथा ।।३७।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।३८।।

हिं० पद्य २२

प्रज्वलित अग्नि प्रचण्ड करती भस्म ईंधन को यथा ।
त्यों ज्ञान रूपी अग्नि से सब कर्म जलते सर्वथा ॥३७॥
इस विश्व में शुचिज्ञान सम है कुछ नहीं यह सत्य ही ।
है योग जिनका सिद्ध पाते ज्ञान अपने आपही ॥३८॥

मूल

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।३९
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०

हिं० पद्य २३

जिसने किया वश इन्द्रियों को ज्ञान जिसका ध्येय है ।
श्रद्धालुजन वह ज्ञान पाता शान्ति पाता श्रेय है ॥३९॥
पर ज्ञान श्रद्धा शून्य संशय युक्त होते नष्ट हैं ।
परलोक से भी रहित होकर धर्म से भी भ्रष्ट हैं ॥४०॥

मूल

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥४१॥
तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

हि० पद्य २४

सब योग बल से कर्म जिनके ज्ञान से भ्रम दूर हैं ।
उस आत्मज्ञानी के धनंजय ! कर्म बन्धन चूर हैं ॥४१॥
हृदयस्थ भ्रम अज्ञान जनित समूल भारत काटदो ।
तेजस्वी ज्ञान-असि योगीबनो उठो रण पाटदो ॥४२॥

ॐ तत्सदिति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे ज्ञान कर्म संन्यास योगो नाम चतुर्थोऽध्यायः

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

अर्जुन बोला—हिं० पद्य १

संन्यास को उत्तम बता फिर कर्म योग बखानते ।
इक मार्ग निश्चय कर कहो तुम शुभ जिसे हो मानते ॥१॥

तब भगवान कहनेलगे

हैं मोक्षप्रद शुभ मार्ग दोनों योग और संन्यास के ।
पर श्रेष्ठतर है कर्मयोग कहीं न पथ संन्यास के ॥२॥

मूल

ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥
सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

हिं० पद्य २

जो द्वेष इच्छा रहित है संन्यास से वह युक्त हैं।
सुखदुःखद्वन्द्व विहीन होते कर्म बन्धन मुक्त हैं ॥३॥
जो सांख्य-मत से योग-मत कुछ भिन्न कहते अज्ञ हैं।
हैं लक्ष इनका एकही यह जानते तत्त्वज्ञ हैं ॥४॥

मूल

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥६॥

हि० पद्य ३

मत सांख्य पहुँचाता जहांपर योग पहुँचाता वहीं ।
ज्ञानी वही है जानता जो भेद दोनों में नहीं ॥५॥
संन्यास का पाना कठिन है योग बिन अर्जुन ! महा ।
मुनि योग युत होकर पहुंचते ब्रह्म के हो पास हा ॥६॥

मूल

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

हि० पद्य ४

जो योग युत अन्तःकरणका शुद्ध इन्द्रियजीत है ।
वह ब्रह्म हो में लीन हो जिसने लिया मन जीत है ॥
जो कर्म करके भी सदा रहता न उनमें लिप्त है ।
वह कर्म फल की चाह तज रहता सदा ही तृप्त है ॥७॥

मूल

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥८-९॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

हिं० पद्य ५

योगी तथा सब तत्व ज्ञानी ज्ञान से रक्खें यही ।
करता नहीं मैं कुछ स्वयं सब प्रकृति करवाती सही ॥
यह देखने सुनने तथा छूने विसर्जन की क्रिया ।
सब सूंघनेखाने पलक अरु सांस की सारी क्रिया ॥

६

या बोलने सोने तथा कर-पाँव के जो कर्म हैं ।
वह होरहे हैं इन्द्रियों से यह इन्हीं के धर्म हैं ॥८-९॥
जो ब्रह्म अर्पण हेतु करते कर्म अपने हित नहीं ।
लगता न उनको पाप ज्यो जल जलज पत्ते को नहीं ॥१०॥

मूल

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

हि० पद्य ७

मन बुद्धि तन से नित्य योगी इन्द्रियों से भी तथा ।
हैं कर्म करते आत्म-शुद्ध विचार से जो सर्वथा ॥११॥
योगी फलाशा त्यागकर निर्द्वन्द्व रहता शान्त है ।
बिन योग विषयासक्त होता बुद्धि रहती भ्रान्त है ॥१२॥

मूल

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

हिं० पद्य ८

तज कर्म को मन से सुखी देही विचरता है यहीं ।
नवद्वार युत तन-ग्राम में करता कराता कुछ नहीं ॥१३॥
"प्रभु" कर्मकर्ता कर्मफल निर्माण कर्ता है नहीं ।
सब प्रकृति करवाती विवश हो कौन क्या करता नहीं ॥१४॥

मूल

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

हिं० पद्य ९

लेता न "विभु" है पुण्य प्राणी का न लेता पापही ।
प्राणी भ्रमित अज्ञान से हैं दुःख पाते आप ही ॥१५॥
अज्ञान जिनका हट गया है आत्म-ज्ञान विकाश से ।
वह परम तत्व प्रकाश पाते ज्ञान-सूर्य प्रकाश से ॥१६॥

मूल

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

हिं० पद्य १०

उसमें लगी है बुद्धि जिनकी चित्तभी उसमें लगा।
जो समझते सर्वस्व उसको ही तथा अपना सगा॥
जो शुद्ध हैं अघ-घोर जिनके ज्ञान जलसे धुल गये।
होता न उनका जन्म फिर सर्व कर्म बन्धन खुल गये॥१७॥

मूल

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥१८॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९

हिं० पद्य ११

विद्या विनय युत विप्र हाथीगाय कुत्ते आदि पर ।
रखते सदा समदृष्टि पण्डित जन सभी श्वपचादि पर ॥१८॥
सम बुद्धि जिनकी होगई थिर चित्तजिसने है किया ।
रहते हुए जग में जगतको जीत उसने है लिया ॥१९॥

मूल

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

हिं० पद्य १२

है ब्रह्म सम निर्दोष इससे यह पुरुष जाकर नहीं ।
ब्रह्म-स्थित होते न जिनको विषमता लखती नहीं ॥
जो ब्रह्म-थित हैं ब्रह्मवेत्ता विषमता जिनमें नहीं ।
वह खिन्न अप्रिय पाय हर्षित पाय प्रिय होना नहीं ॥२०॥

मूल

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

हिं० पद्य १३

रहता न जो आसक्त बाह्य पदार्थ के संयोग में ।
वह ब्रह्मयोगी सुख उठाता आत्म सुख के भोग में ॥२१॥
जो भोग मिलते इन्द्रियों के स्पर्श से वह रोग हैं ।
कौन्तेय ! पण्डित जन कभी करते न उनका भोग हैं ॥२२॥

मूल

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥
योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

हिं० पद्य १४

जो काम क्रोध कुवेग को है मृत्यु-पल सहता यहीं ।
होता वही है युक्त पाता सुख न जो मिलता कहीं ॥२३॥

अन्तः सुखी जो आत्म-रमणी आत्मज्योतिर्मय हुआ।
वह कर्म योगी ब्रह्म हो निर्वाण पद भागी हुआ ॥२४॥

मूल

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

हिं० पद्य २५

ऋषि मोक्षपाते हैं वही भ्रम पाप जिनके नष्ट हैं।
जो हों न इन्द्रिय वश नहीं देते किसी को कष्ट हैं॥
करते सदा सब प्राणियों का वह महा कल्याण हैं।
पाते सहज वह देव दुर्लभ विमल पद निर्वाण हैं ॥२५॥

मूल

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥
स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

हिं० पद्य १६

हैं काम क्रोध विहीन जो अरु आत्म ज्ञान जिसे हुआ।
समझो सदा सर्वत्र ही वह मोक्ष पद भागी हुआ ॥२६॥
तज वासनायें उभय भौंके मध्य आखें रोपकर।
सम नासिका से चलित प्राण अपान की गति रोककर॥२७॥

मूल

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥२८॥
भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥२९॥

हिं० पद्य १७

मन बुद्धि इन्द्रिय जीत जो भय क्रोध इच्छा मुक्त है।
यों मोक्ष पथ पर आगया फिर वह सदा ही मुक्त है॥२८॥
तप यज्ञ का भोक्ता सुहृद सब का मुझे ही जानकर।
वह शान्ति करता प्राप्त है मुझ को महेश्वर मानकर॥२९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे कर्मसन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

श्री भगवान कहनेलगे हिंदी पद्य १

जो कर्म फल की आश तज कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहें ।
योगी सुसंन्यासी वही हैं कर्म जो करते रहें ॥
तज अग्नि होम सुकर्म जो करते न कुछ भी कर्म हैं ।
वह जानते नहिं योग या संन्यास के ही मर्म हैं ॥१॥

मूल

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

हिं० पद्य २

पाण्डव ! जिसे संन्यास कहते जान उनको योग भी।
संकल्प के संन्यास बिन क्या योग है कभी ॥२॥
जो योगपद आसीन होना चाहते उनके लिये।
है कर्म कारण शमन का शम पूर्ण योगी के लिये ॥३॥

मूल

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

हिं० पद्य ३

जो इन्द्रियों के विषय-भोगों में न भोगासक्त हो।
जो तनक भी रहता नहीं है कर्म में आसक्त हो ॥
करके सकल संकल्प का संन्यास जो निष्काम हो।
बस योग-पद पर वह प्रतिष्ठित होगया ऐसा कहो ॥४॥

मूल

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

हिं० पद्य ४

उद्धार करले आप दे गिरने न अपने आपको।
रिपु मित्र अपना जानले वह आप अपने आपको ॥५॥
जो आत्म विजयी हो गया वह आप अपना मित्र है।
जिसने विजय पाई नहीं अपना महान अमित्र है ॥६॥

मूल

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥

हिं० पद्य ५

जो आत्म विजयी हैं तथा रस-शांति करते पान हैं।
उनके लिये अन्तर नहीं सम मान अरु अपमान है॥
समभाव परमात्मा सदा उनका विचरता एकसा।
हो शीत अथवा धूप होवे दुःख या सुख देरसा ॥७॥

मूल

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥८॥

हि० पद्य ६

सन्तुष्ट ज्ञान विज्ञान से कूटस्थ आत्मा में सदा।
जो हो जितेन्द्रिय तत्व को पहिचानता हो सर्वदा॥
रज स्वर्ण पत्थर में न जिनको भिन्नता है दीखती।
कहते उसे ही सिद्धि युक्त वही महा योगी यती॥८॥

मूल

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥९॥

हिं० पद्य ७

द्वेषी सुहृद रिपु मित्र वैरागी तथा पापी सभी।
मध्यस्थ बान्धव साधु दुष्ट समान जब दीखें सभी॥

सबसे हुई सम दृष्टि जिसकी हृदय भेदन शेष है ।
समझो उसेही सिद्ध उसकी योग्यता सविशेष है ॥९॥

मूल

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

हिं० पद्य ८

एकान्त में रहकर अकेला मोह माया छोड़कर ।
स्वाधीन करके चित्तको सुख वासना से मोड़कर ॥
सब योगियों को नियम युत जीवन बिताना चाहिये।
तज कामनाएँ सकल योगाभ्यास करना चाहिये ॥१०॥

मूल

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११

हिं० पद्य ६

जो भूमि समतल शुद्ध हो उसपर कुशासन डालकर।
मृगचर्म से ढककर उसे पुनि वस्त्र उसपर डालकर॥
आसन लगावे सुदृढ़ पावन तनक चंचल हो नहीं।
आसन न हो अति ऊँच या अति नोच भी होवे नहीं॥११॥

मूल

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥१२॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥१३॥

हिं० पद्य १०

मन चित्त चंचल इन्द्रियों की रोक कर सारी क्रिया।
करता रहे नित आत्म-शुद्धि निमित्त यो योगक्रिया॥१२॥
सीधे अचल शिर ग्रीव और शरीर हो चंचल नहीं।
हो दृष्टि केवल नाक की हीं नोक पर स्थिर सही॥१३॥

मूल

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

हिं० पद्य ११

हो शान्त निर्भय ध्यान मेरा नित्यशः करता हुआ ।
हो मत्परायण ब्रह्मचर्य महान व्रत रखता हुआ ॥
मन पर विजय कर प्राप्त योगाभ्यास जो करता रहे ।
होता वही है युक्त मेरा ध्यान जो करता रहे ॥१४॥

मूल

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

हिं० पद्य १२

मन हो स्ववश अरु क्रम रहे यदि योग का जारी सदा ।
तो प्राप्त होवे शान्ति जो मुझ में विचरती सर्वदा ॥

निर्वाण प्रद सुख शान्ति रस का स्वाद पाता है वही ।
उपरोक्त विधि से नित्य योगाभ्यास जो करता सही ॥१५॥

मूल

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

हिं० पद्य १३

जो अत्यधिक खाते सदा या कुछ नहीं खाते कभी ।
सोते बहुत ही अधिक जो या हैं नहीं सोते कभी ॥
उनके लिये यह योग होता दुःख दायी रोग है ।
साधन न होसकता कभी उनसे कठिन यह योग है ॥१६॥

मूल

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

हिं० पद्य १४

जो नियम से आहार और विहार करते सर्वदा ।
जो जागते सोते नियम से कर्म सब करते सदा ॥

वह यदि करे अभ्यास तो सब दुःख उनके दूर हो।
हो योग युक्त स्वभाव से भव रोग सारे चूर हों ॥१७॥

मूल

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९

हिं० पद्य १५

जब चित्त वश हो आत्म चिन्तन में सदाही रत रहे।
सब कामनाएँ दूर हों तब युक्त हो योगी रहे ॥१८॥
चलती न दीपक ज्योति ज्यों है वायु शून्य स्थान में।
त्यों चित्त योगाभ्यासियों का अचल रहता ध्यान में ॥१९॥

मूल

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

हिं० पद्य १६

हो चित्त संयम योग युत विश्राम लेता है जहां ।
सन्तुष्ट अपने आप को ही देखकर योगी जहां ॥२०॥
उस अतीतसूक्ष्म बुद्धि को है अपार सुख मिलता जहां !
जो बुद्धि से ही जान पड़ता इन्द्रियां जाने कहां ॥२१॥

मूल

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।२२

हिं० पद्य १७

डिगता नहीं वह तत्व से इकबार थिर होकर जहां ।
सन्तुष्ट हो रहकर उसीमें जिस दशामें है जहां ॥
विचलित न होता दुःख पाकर घोर भी योगी जहां ।
यह जान दुख संयोग से होता वियोग सदा वहां ॥२२॥

मूल

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

हिं० पद्य १८

कहते इसे हैं योग जानो स्थिति यही है योग की ।
अभ्यास करना चाहिये इसका न इच्छा भोग को ॥२३॥
सँकल्प जनित समस्त मन की कामनाएँ छोड़कर ।
चहुं ओर से सब इन्द्रियों को पार्थ ! मनसे रोककर ॥२४॥

मूल

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।२५

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

हिं० पद्य १६

फिर हो सुधीर सुशान्ति धीरे प्राप्त करनी चाहिये ।
मन आत्म चिन्तन में लगा चिन्ता न करनी चाहिये ॥२५॥
चाहे जहां से भागता मन चपल चंचल चाल से ।
उसको वहां से खींच लावे ज्ञान रूपी ढाल से ॥२६॥

मूल

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

हिं० पद्य २०

जो शान्त-मन अघ रज रहित हैं ब्रह्म में वह मिलगये ।
मिलता उन्हें सुख श्रेष्ठ उनके दुःख सारे मिटगये ॥२७॥

यों योग का अभ्यास करते जो महात्मा लोग हैं।
वह ब्रह्म के सुस्पर्श का करते सदा उप भोग हैं ॥२८॥

मूल

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

हिं० पद्य २१

सर्वत्र समदर्शी तथा शुभ योग से जो युक्त हैं ।
जो भेद बन्धन से रहित वह नित्य रहते मुक्त हैं ॥
वह देखता है आपमें सबको सभी में आपको ।
लखता न उसको पाप वह लखता नहीं है पाप को ॥२९॥

मूल

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

हिं० पद्य २२

सर्वत्र मैं ही और मुझ में दीखते जिसमें सभी।
उससे न मैं मुझसे न वह है पृथक हो सकता कभी॥३०॥
घट घट निवासी जान मुझ को पूजता जो दास है।
वह कर्म करके भी सदा करता मुझी में वास है॥३१॥

मूल

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२॥

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्३३

हिं० पद्य २३

योगी वही है श्रेष्ठ जो सबको बराबर जानता।
जो दूसरों के दुःख सुख को पार्थ! अपना मानता॥३२॥

अर्जुन बोला

सम दृष्टि रखने के लिए जो आपने मुझ से कहा।
मैंने उसे समझा नहीं मन था हुआ चंचल महा ॥३३॥

मूल

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

हिं० पद्य ३४

हे कृष्ण मन चंचल हठीला दृढ़ तथा बलवान है ।
करना उसे वश में कठिन दुःसाध्य वायु समान है ॥३४॥

श्रीभगवान ने कहा

मन पर विजय पाना कठिन है हे महाबाहो ! सही।
कौन्तेय ! वश वैराग्य अरु अभ्यास से हो शीघ्र ही ॥३५॥

मूल

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।३६

अर्जुनोवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७

हिं० पद्य २५

मन वश हुए विन मति यही मेरी न मिलता योग है।
पर यत्न से कर आत्म संयम प्राप्त होता योग है॥३६॥

अर्जुन बोला।

हे कृष्ण ? मधुसूदन ?? मुझे यह तो भला बतलाइये।
मेरे हृदय की भ्रांति को हे नाथ ? शीघ्र भगाइये॥३७॥

मूल

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥३८॥

हिं० पद्य २६

जिसका हृदय श्रद्धालु हो पर यत्न संयम की कमी ।
हो योग सिद्धि न प्राप्त पाता कोनसीगति संयमी ॥
क्या स्थिर न हो वह मोह वश होता उभय पथ भ्रष्ट है ।
या छिन्न होकर घन-पटल सा कृष्ण होता नष्ट है ॥३८॥

मूल

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

श्री भगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् र्गतिं तात गच्छति ४०

हिं० पद्य २७

हे हे जनार्दन ! दूर यह सन्देह मेरा कीजिये ।
है कौन दूजा आप बिन भ्रम आप मेरा छीजिये ॥३९॥

श्रीभगवान ने कहा

वह हो कहीं पर पार्थ ! उसका नाश होता है नहीं।
कल्याणकारी कर्म से दुर्गति न होती है कहीं ॥४०॥

मूल

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

हि० पद्य २८

जाता वहीं वह धर्मवीर मनुष्य है जाते जहां।
जाकर विचरता योग भ्रष्ट मनुष्य वर्षों तक वहां॥
वह पुण्य फल को भोग फिर आता जगत में जन्म ले।
श्रीमान् पावन वंश पाता गृह निवासी जहं भले॥४१॥

मूल

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

हिं० पद्य २६

या जन्म पाता परम ज्ञानी योगियों के वंश में ।
जहँ जन्म लेना है महा दुर्लभ सु-कुल अवतंसमें ॥४२॥
मिलते उसे संस्कार उसने पूर्व में जो थे किये ।
उससे पुनः वह यत्न करता सिद्धि पाने के लिये ॥४३॥

मूल

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

हिं० पद्य ३०

वह सिद्धि पाता सहज ही निज पूर्व योगाभ्यास से।
हैं ज्ञान पाते योग के जिज्ञासु भी अभ्यास से ॥४४॥
यो यत्न युत अभ्यास करके मुक्त होकर पाप से ।
बहु जन्म के पाश्चात योगी छूटता भव ताप से ॥४५॥

मूल

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ४६
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

हिं० पद्य ३१

है श्रेष्ठतर वह मुक्त योगी कर्मकाण्डी से कहीं।
फिर श्रेष्ठतर ज्ञानी तपस्वी से कहीं वह कम नहीं॥
अतएव अर्जुन ! तुम बनो योगी यही उपदेश है।
इस मार्ग का कोई पथिक पता न कुछ भी क्लेश है॥४६॥

हिं० पद्य ३२

है योगियों में श्रेष्ठ योगी मैं समझता हूँ वही !
जो शुद्ध श्रद्धा भक्ति से भजता मुझे है नित्य ही॥
सर्वस्व अपना मन मुझे जो सौंपता है चाव से।
लेकर शरण मेरी मुझे जो भक्त भजता भाव से॥४७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

श्री भगवान ने कहा हिं० पद्य १

हे पार्थ ? मुझमें मन लगाकर साधना करते हुए ।
मेरी शरण लेकर भजन मेरा सदा करते हुए ॥
जिस ज्ञान से हो युक्त मुझको जानलोगे सर्वथा ।
संशय रहित होगे सुनो वह ध्यान से पावन कथा ॥१॥

मूल

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

हिं० पद्य २

यह ज्ञान जो कहता तुझे मैं पूर्ण ज्ञान विशेष है ।
फिर ज्ञान जिसको जानना रहता न कुछ भी शेष है ॥२॥
इक आद ही करते सहस्रों में यतन इसके लिये ।
मिलता न सच्चा ज्ञान मेरा यतन भी सबके किये ॥३॥

मूल

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

हिं० पद्य ३

तुम जानलो मेरी प्रकृति के भिन्न जेते पाठ हैं ।
भू-वायु-जल-आकाश-पावक—बुद्धि—मन—मद आठ हैं ॥४॥
यह गौंड़ है मेरी प्रकृति जानो महाबाहो ! सही ।
संसार धारण हेतु इससे उच्चतर है और ही ॥५॥

मूल

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

हिं० पद्य ४

प्राणी सभी उत्पन्न होते हैं मुझी से जानलो ।
सारे जगत का मूल एवं अन्त मैं हूं मानलो ॥६॥
सुनलो कहीं मुझ से परे कुछ भी धनंजय ! है नहीं।
मणि-माल सम मुझ में गुथे हैं सब अलग कोई नहीं ॥७॥

मूल

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

हिं० पद्य ५

रस-रूप हूं कौन्तेय ! जलमें हूं प्रभा शशि सूर्य में ।
ओंकार वेदों में तथा हूं शब्द मैं ही शून्य में ॥८॥
पुरुषार्थ पुरुषों में तथा पृथ्वी में सु-पावन गन्ध हूं ।
मैं अग्नि में हूं तेज होकर जीव जीवों में रहूं ॥९॥

मूल

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

हिं० पद्य ६

हे पार्थ ! तापस-तप तथा सब प्राणियों का बीज हूँ ।
मैं पण्डितों की बुद्धि हूं तेजस्वियों का वीर्य्य हूँ ॥१०॥
बल हूं बली का तोड़ता उस विषय कामासक्तिको ।
सद्भाव प्रेरक काम हूं जो पुष्ट करता भक्ति को ॥११॥

मूल

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

हिं० पद्य ७

सत, रज तथा तम हैं हुए उत्पन्न मुझ से जानलो ।
वह हैं सभी मुझसे न मैं उनमें कभी यह मानलो ॥१२॥
हो मूढ़ त्रिगुणात्मक प्रकृति से जानते सब हैं नहीं ।
निर्गुण लखें उनको कहां उनसे परे जो है कहीं ॥१३॥

हिं० पद्य ८

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

हिं० पद्य ८

वह गुण मयी माया प्रबल दुर्भेद्य है दुस्तर महा।
आते शरण जो पार होते अति सुगमता से अहा ॥१४॥
पर मूढ दुष्कर्मी जिन्हें है अन्ध माया ने किया।
आते नहीं मेरी शरण हर ज्ञान माया ने लिया ॥१५॥

मूल

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥१६॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥१७॥

हिं० पद्य ६

बस चारि विधि के ही मनुज हैं भक्ति मेरी मानते।
जिज्ञासु ज्ञानी अति अर्थार्थी मुझे है चाहते ॥१६॥
पर श्रेष्ठ वह है जो मुझे भजता अनन्य स्वभाव से।
निष्काम हो जो सर्वदा भजता मुझे सद्भाव से ॥१७॥

मूल

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितःस हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् १८

हिं० पद्य १०

ज्ञानी मुझे अरु मैं उसे अत्यन्य प्रिय हूं सर्वदा ।
यद्यपि सभी हैं भक्त पर हैं आत्मवत ज्ञानी सदा ॥
वह योग युक्त सदैव मेरे ध्यान में रहता लगा ।
वह जानता है बस मुझे ही उत्तमोत्तम गति सगा ॥१८॥

मूल

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९

हिं० पद्य ११

लेता सहस्रों जन्म ज्ञानी फिर भी मुझे पाता नहीं ।
करके अनेकों यत्न भी कितने मुझे पाते नहीं ॥

ऐसा महात्मा है महादुर्लभ न मिलता शीघ्र ही।
जो देखता है ब्रह्म को हर वस्तु में सर्वत्र ही ॥१९॥

मूल

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।२०
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

हिं० पद्य १२

जो काम वश है प्रकृति वश हैं ज्ञान जिनको है नहीं।
वह अन्य देवी देवता को पूजते मुझको नहीं ॥२०॥
जिस रूप की जो भक्त श्रद्धा भक्ति करना चाहता।
उस रूप में मैं भक्ति उसकी अचल करना चाहता ॥२१॥

मूल

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

हिं० पद्य १२

उस रूप की उस भाव से करके सदा पूजन क्रिया ।
पाता सहज वह इष्ट-फल निश्चित नियत मेरा किया ॥२२॥
अल्पज्ञ जन के प्राप्त ये फल सर्वदा रहते कहां ।
जाते सुराराधक सुरों के पास मेरे मम यहां ॥२३॥

१४

पूजले कोई किसीको पर ब्रह्म पूजे बिन कहीं ।
मिलता अमर-फल मोक्ष जैसे तैल बालू से नहीं ॥
अतएव प्रभु के भक्त ही हैं मोक्ष अधिकारी सदा ।
अव्यक्त में ही लीन होते भक्त जो वह सर्वदा ॥

मूल

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।२५

हिं० पद्य १५

जो मूढ़ अरु अज्ञान हैं वह जानते मैं व्यक्त हूं ।
पहँचानते वह हैं नहीं मैं शुद्ध हूं अव्यक्त हूं ॥२५॥
मैं दीखता सब को नहीं निज योग माया युक्त हो ।
है मूढ़ नहिं अव्यय अजन्मा जानते भ्रम युक्त हो॥२५॥

मूल

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥२६।
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

हिं० पद्य १६

जो वर्तमान भविष्य एवं भूत सबको जानता।
पर एक भी ऐसा नहीं है जो मुझे पहँचानता ॥२६॥

इस द्वेष इच्छा जनित द्वन्द्व विमोह ने भारत सभी।
हैं मोह दुख के जाल में फसते न रहता ज्ञान भी॥२७॥

मूल

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९

हिं० पद्य १७

जो पुण्यकर्मा द्वन्द्व मोह विहीन हैं निष्पाप हैं ।
दृढ़ भक्ति वह करते कभी तपते नहीं त्रयताप हैं॥२८॥
जो चाहते हैं मुक्ति मृत्यु जरा जलन जंजाल से ।
वह ब्रह्म कर्म स्वभाव ज्ञाता छूटते भव-जाल से॥२९॥

मूल

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०

हिं० पद्य १८

जो जानते अधिभूत मुझको और मैं अधियज्ञ हूं ।
अधिदैव हूं सर्वत्र हूं जो जानते सर्वज्ञ हूं ॥
चैतन्य जन वह ज्ञान युत रहते सदा हर काल में ।
वह भूलते मुझको नहीं तन त्याग अन्तिम काल में ॥३०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुनसंवादे ज्ञान विज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ अथाष्टमोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथंज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

अर्जुन बोला हिं० पद्य १

कौन है वह ब्रह्म भगवन् कर्म क्या ! अध्यात्म क्या ।
कहते किसे अधिभूत हैं कहिये प्रभो अधिदैव क्या ॥१॥
इस देह में है कौन क्या ! अधियज्ञ को मानें सही ।
पहचानते कैसे तुम्हें योगीश इन्द्रिय निग्रही ॥२॥

श्री भगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

श्री भगवान ने कहा हिं० पद्य २

जिसका न होता नाश है जो नित्य अक्षर है वही।
कहता तुझे हूं सुन सखे है ब्रह्म यह जानो सही॥
अध्यात्म हैं प्रति वस्तु का जो मूल भावाधार हैं।
है कर्म अक्षर ब्रह्म से जो सृष्टि का व्यापार है॥३॥

मूल

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥४॥

हिं० पद्य ३

अधिभूत भावाभावही इस सृष्टि का तुम जानलो।
अधिदैव पुरुष सकेत है यह तत्व भी पहचान लो॥
अधियज्ञ मैं ही हूं मुझेही यज्ञ अधिपति मानलो।
इसदेह में अधिदेह मैं हूं सत्य नरवर जानलो॥४॥

मूल

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥५॥

यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

हिं० पद्य ४

यह देह तजते समय जो भजता मुझे सस्नेह है ।
होता मुझी में लीन वह इसमें नही सन्देह है ॥५॥
कौन्तेय ! जो जिस रङ्ग में रहता रँगा है सर्वदा ।
तन त्याग काल न भूलता वह याद रहता है सदा ॥६॥

मूल

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥८॥

हिं० पद्य ५

करते हुऐ मेरा स्मरण मन बुद्धि कर अर्पण मुझे ।
कर युद्ध भारत हो न आरत फिर मिलूंगा मैं तुझे ॥७॥

जो चपल चंचल चित्त की गति रोक करके चाव से ।
हैं ध्यान करते दिव्य दीनानाथ का सद्भाव से ॥८॥

मूल

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

हिं० पद्य ९

अति सूक्ष्म से भी सूक्ष्म सूर्य स्वरूप जो सर्वेश है ।
सर्वज्ञ सर्वाधार और अचिन्त्य जो प्राणेश है ॥
सब का नियन्ता सृष्टि करता परम प्रभु जो गेय है।
उसका करे जो ध्यान वह जगदीश जगका ध्येय है ॥९॥

मूल

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

हिं० पद्य ७

जो प्राण भ्रकुटी मध्य थिरकर याद फिर करता हुआ।
एकाग्र निश्चल ईश में मनलीन कर रमता हुआ॥
वह प्रेम रस पियूष पीता योग-बल से अन्त में।
मिलता सहज सो प्रेम के भाण्डार श्री भगवन्त में॥१०॥

मूल

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥११॥

हिं० पद्य ८

कहते जिसे वेदज्ञ अक्षर जाय जहँ योगी यती।
जिस परम पद प्राप्त्यर्थ पालें ब्रह्मचर्य महाव्रती॥

कहता तुझे संक्षेप से मैं परम पद वह सुन सखे ।
होकर अविद्या नाश फिर "ओंकार" ही मन में लखे ॥११॥

मूल

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् १२
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३

हिं० पद्य ६

कर बन्द इन्द्रिय द्वार मनको हृदयगृह में थिर किये ।
हो योगस्थित निज प्राण मस्तक में चढ़ा जिसने दिये ॥१२॥
ओंकार अक्षर ब्रह्म को तज वासना रटता रहे ।
देहान्त पुनि होजाय तो वह परम-पद निश्चय लहे ॥१३॥

मूल

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

हिं० पद्य १०

श्रद्धा सहित भजता मुझे जो सर्वदा सब काल में ।
वह नित्य रतयोगी सुलभ पाता मुझे हर हाल में ॥१४॥
यों सिद्ध पद को पाय जो पाते मुझे फिर वह सभी ।
पाते न नश्वर देह दुख-प्रद पार्थ क्षणभंगुर कभी ॥१५॥

मूल

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

हिं० पद्य ११

शुभ कर्म से है स्वर्ग मिलता पुण्यफल पाते जहां ।
पुण्यांश होता अन्त ज्योंही जन्म होता फिर यहां ॥
स्वर्गादि पाकर भी न अर्जुन कर्म बन्धन छूटता ।
कौन्तेय ! पातेही मुझे पर कर्म बन्धन टूटता ॥१६॥

मूल

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥१७

हिं० पद्य १२

सुन एक ब्रह्म दिवस होता सहस्र युग का तात है।
हे पार्थ होती सहस्र युगकी एक ब्रम्हारात है॥
यों जानते जो तत्वतः वह काल हैं पहचानते।
हैं कालके परिणाम को वेही भली विधि जानते॥१७॥

मूल

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥१८॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥१९॥

हिं० पद्य १३

अव्यक्त से सब व्यक्त होते विधि दिवस आरम्भ में।
फिर लीन होते ब्रह्म में सब ब्रह्म रात्र्यारम्भ में॥१८॥

चलती प्रकृति वश सर्वदा है जन्म लय की यह क्रिया।
ये भूतगण भी पड़ भँवर में भ्रमण हैं करते किया ॥१९॥

मूल

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

हिं० पद्य १४

अव्यक्त ब्रह्म सनातनी है दूसरा इससे परे ।
होता नहीं है नाश जिसकाप्रलय पाला के परे ॥२०॥
अक्षर उसीका नाम है कहते परम गति हैं उसे ।
आवागमन फिर फिर कभी होता नहीं पाकर उसे ॥२१॥

मूल

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्२२

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

हिं० पद्य १५

सब भूत हैं रहते उसीमें सृष्टि कर्ता हैं वही ।
वह ब्रह्म पुरुषोत्तम सु-अविरल भक्ति से मिलता सही।
किस काल में पा मृत्यु योगी लौटते किसमें नहीं।
मैं कह रहा हूं ध्यानसे हे पार्थ ! तुम सुनलो यही ॥२३॥

मूल

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४

हिं० पद्य १६

जब अग्नि ज्वाला ज्योति दिन या सौर पावन पक्ष हो ।
या उत्तरायण छः महीने सूर्य का थिर अक्ष हो ॥
फिर मृत्यु हो तो ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मपद पाते जहां ।
सुख शान्ति का साम्राज्य है आना न होता फिर यहां ॥२४॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

हिं० पद्य १७

यदि धूम निशि या कृष्ण-पक्ष अकाल में योगी मरे।
या सूर्य होवे दक्षिणायन कर्न बन्धन नहि टरे ॥
जाता सही वह कर्म योगी चन्द्रलोक सुलोक में ।
पर पुण्य फल को भोगकर आता पुनः इसलोक में ॥२५॥

मूल

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥

हिं० पद्य १८

इस जगत के दो मार्ग हैं आते सनातन से यही ।
इक शुक्ल दूजा कृष्ण है शुभ एक दूजा अशुभ ही ॥
जो शुक्ल पथ के पथिक हैं जाकर न आते वह कभी।
पर कृष्ण पथके पथिक तो पथ भ्रांतहो आते सभी ॥२६॥

मूल

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

हिं० पद्य १६

जो हैं भली विधि जानते इनको नहीं वह फिर कभी।
फसते नहीं तम-मोह में हे पार्थ ! पाते ज्ञान भी॥
अतएव अर्जुन ! है यही उपदेश तुम योगी बनो।
इस योग में ही रत रहो ज्ञानी बनो ध्यानी बनो॥२७॥

मूल

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥२८॥

हिं० पद्य २०

तप यज्ञ वेदाध्ययन अथवा दान फल से भी परं।
जो पुण्यपद है या उसे योगी सहज भव निधि तरे॥
सब पुण्यफल हैं तुच्छही स्थायी न उसका मूल्य है।
योगी परम पद प्राप्त करता अमर और अमूल्य है॥२८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगोनाम अष्टमोऽध्यायः॥

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

हि० पद्य १

तू दोष दर्शी है नहीं अतएव मैं उस ज्ञानको ।
विज्ञानयुत कहता तुझे सुन प्राप्त हो सद् ज्ञानको ॥१॥
जो गूढ़तम है गुह्यतम है राजविद्या है तथा ।
उत्तम परम पावन सुलभ फल देय है जो सर्वथा ॥२॥

मूल

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

हिं० पद्य २

श्रद्धारहित इस धर्म से पाते न वह मुझको कभी ।
फिर मृत्यु-चक्र प्रवाह में बहते चलेजाते सभी ॥
आवागमन के फेर में पड़ दुःख पाते वह सदा ।
मति-मन्द विषयासक्त होकर पतित रहते सर्वदा ॥३॥

मूल

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥
नच मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

हिं० पद्य ३

मैं तो स्वयं अव्यक्तहूं पर जगत मुझ से व्यक्त है ।
मुझ में सभी हैं मैं नहीं उनमें समझ तू भक्त है ॥४॥
मुझ में सभी हैं फिरनहीं मैं ईश्वरी करनी यही ।
योगेश्वरी लीला अनोखी देख मेरी है यही ॥५॥

मूल

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

हिं० पद्य ४

मुझसे सभी उत्पन्न हैं पलते सभी मुझसे सही ।
उनमें नहीं हूं देखलो आश्चर्य तो फिर है यही ॥
रहता सदा सर्वत्र व्यापी वायु ज्यों आकाश में ।
त्यों जीव मुझ में व्याप्त हैं हों बद्ध नहिं भव-पास में ॥६॥

मूल

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्तिमामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

हिं० पद्य ५

कल्पान्त में कौन्तेय मुझ में लीन होते हैं सभी ।
फिर कल्प के आरम्भ में ही जन्म पाते हैं सभी ॥७॥

निज कर्म वश जो भूत गण होते प्रकृति गुण बद्ध हैं।
वह जन्म बारम्बार लेते कर्म बन्धन युक्त हैं ॥८॥

मूल

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

हिं० पद्य ६

इस सृष्टि का निर्माण कर्ता हूं धनंजय आपही ।
पर कर्म बन्धन बद्ध या रहता नहीं आसक्त ही ॥९॥
बनकर स्वयं अध्यक्ष करवाता प्रकृति से सृष्टि हूं।
कौन्तेय ! मैं रखता सदा इस सृष्टि लय पर दृष्टि हूं ॥१०॥

मूल

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

हिं० पद्य ७

जो मूढ़ हैं वह तो मुझे पहचानते ही हैं नहीं।
वह जानते हैं देहधारी मुझ महेश्वर को नहीं॥
मैं कौन हूं इसका उन्हें होता न सच्चा ज्ञान है।
रहता उन्हें निज कर्म का निज बुद्धि का अभिमान है॥११॥

मूल

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥१२

हिं० पद्य ८

सब कर्म उनके व्यर्थ आशा बस दुराशा मात्र हैं।
है ज्ञान का चलता न चारा चित्त भ्रम का पात्र है॥
यह आसुरी है प्रकृति मोह मरीचिका जानो इसे।
हैं अज्ञ अपनाते जिसे हैं त्यागते ज्ञानी उसे॥१२॥

मूल

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥१३।

हिं० पद्य ९

पर पार्थ ! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्मा गण सभी,।
हैं जानते सब प्राणियों का आदि मैं हूं अन्तभी ॥
इस भांति मुझ को जान वह भजते अनन्य स्वभाव से।
वह पूजते हैं प्रेम से मुझ को सदा सद्भाव से ॥१३॥

मूल

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

हिं० पद्य १०

मेरा सदा कीर्तन भजन करते यतन से नेम से ।
हो योग युक्त उपासते नमते मुझे वह प्रेम से ॥
कितने सश्रद्धा पूजते मुझको सदा सद्भाव से ।
करते अनेकों ज्ञान यज्ञ विधान भी अति चाव से ॥१४॥

मूल

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

हिं० पद्य ११

चाहे जिसे वह पूजलें मैं ही सबों का पूज्य हूं ।
जिस भांति करलें चन्दना मैं गुरु प्राणम्य सु-पूज्य हूं ॥
मैं विश्वतो मुख हूं इसी विश्वास पर उनकी क्रिया ।
चलती सदा वह नित्य पूजन कर्म हैं करते क्रिया ॥१५॥

मूल

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥

हिं० पद्य १२

मैं यज्ञ में औषध स्वधा मैं मन्त्र हूं मैं द्रव्य हूं ।
मैं अग्नि में आहुति तथा मैं हवन का द्रव्य हूं ॥१६॥
माता पिता धाता पितामह विश्व का आधार हूं ।
जो ज्ञेय पावन है वही ऋक् साम यजु ओंकार हूं ॥१७॥

मूल

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

हिं० पद्य १३

मैं विश्व पालक गति सखा साक्षी निवासस्थान हूँ ।
उत्पत्ति स्थिति लय शरण अव्यय बीज और निधान हूँ ॥१८॥
हो जलद जल देता उसे फिर रोक देता ताप हूँ ।
मृत्यु अमृत सत् असत् रिपु मित्र अपने आप हूँ ॥१९॥

मूल

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०

हिं० पद्य १४

जो सोम-रस पीते अनघ या वेद के मर्मज्ञ हैं।
वह स्वर्ग के लाभार्थ करते नित्य पूजा यज्ञ हैं॥
है सुरपुरी मिलती उन्हें मिलता महा आनन्द है।
कटता नहीं तो भी कठिन आवागमन का फन्द है॥२०॥

मूल

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥२१॥

हिं० पद्य १५

पुण्यांश फलको भोग वह आते इसी मृतलोक में।
भूलोक से सुर लोक में सुरलोक से भूलोक में॥
त्रैधर्म पालन यज्ञ जप से स्वर्ग सुख मिलता सही।
पर कर्म बन्धन टूटता नहिं याद रखनो नित्यही॥२१॥

मूल

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

हिं० पद्य १६

भजते मुझे हैं भक्ति युत जो भक्त सच्चे भाव से।
करता सदा मैं नित्य योग-क्षेम उनका चाव से ॥२२॥
जो त्याग मुझको अन्य देवी देवता को पूजते।
यद्यपि न विधिवत् पर मुझे ही पार्थ ! वह भी पूजते ॥२३॥

मूल

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४।

हिं० पद्य १७

संसार में जो विविधि विधि के यज्ञ को प्रचलित कथा।
मैं उन सबों का सर्व स्वामी सर्व भोक्ता हूं तथा ॥
जो जानते मुझ को नहीं उनसे न होता योग है।
वह स्वर्ग से गिरते न उनका छूटता भव-रोग है ॥२४॥

मूल

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्

हिं० पद्य १८

देवव्रती जाते सदा हैं देवताओं के यहां।
हैं पितर प्रेमी पहुंचते निज इष्ट पितरों के यहां ॥
अन्यान्य भूतों के उपासक प्रथक भूतों के यहां।
जो भक्त मेरे हैं सभी आते सहज मेरे यहां ॥२५॥

मूल

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

हिं० पद्य १६

देता मुझे जो भक्त पत्ते पुष्प फल जल प्रेम से।
उस भक्त की मैं भक्ति भेंट सहर्ष लेता नेम से ॥२६॥
जो दान तप भोजन हवन कर्मादि करते हो सभी।
अर्पण करो कौन्तेय मुझ को मुक्त तुम होगे तभी ॥२७॥

मूल

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

हिं० पद्य २०

जब सब शुभा शुभ कर्मफल अर्पण करोगे तुम मुझे।
हो पाप पुण्य विचार बन्धन मुक्त जब पावो मुझे॥
स्वच्छन्द विचरोगे सदा तुम कर्म बन्धन मुक्त हो।
यों शीघ्र पालोगे मुझे सन्यास युक्त वीमुक्त हो ॥२८॥

मूल

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।२६

हि० पद्य २१

मैं एक सा सब के लिये हूं हैं मुझे सब एकसा।
है प्रिय अप्रिय कोई नहीं रहता न कुछ भी भेदसा॥
रहते मुझी में भक्त वह भजते मुझे जो नेम से।
रहता सदा मैं उन सभों में नित्यही अतिप्रेम से ॥२६॥

मूल

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥३१॥

हिं० पद्य २२

होवें दुराचारी न क्यों भजता मुझे जब चाव से।
तो है बड़ा ही साधु वह जो भक्ति करता भाव से ॥३०॥
बनता महात्मा शीघ्र वह पाता सुशान्ति प्रकाश है।
अर्जुन ! न मेरे भक्त का होता कभी भी नाश है ॥३१॥

मूल

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।३३।

हिं० पद्य २३

मेरे भरोसे पार्थ ! पाते हैं परम गति पतित भी।
हों वाम अथवा वैश्य होंवे शूद्र या पददलित भी ॥३२॥
क्या ! ब्राह्मणों राजर्षियों और क्षत्रियों की बात है।
वह पुण्यकर्ता हैं उन्हें मिलता परम पद तात है ॥३३॥

मूल

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

हिं० पद्य ३४

सुख रहित नश्वर जगत में मुझ पर भरोसा राखकर।
विधि वत् करो पूजन क्रिया मद मोहमाया त्यागकर॥
केवल प्रणाम मुझ को करो सर्वस्वदेकर मनलगा।
निष्काम हो करता भजन मिलता वही मुझ में पगा ॥३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्य योगोनाम नवमोऽध्यायः ॥
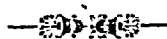
॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

श्री भगवान ने कहा हिं० पद्य १

जो कुछ कहा मैंने उसे सुन तुम हुये हर्षित महा।
अतएव कल्याणार्थ तुम से और कुछ मैं कहरहा ॥१॥
सुर गण महर्षि न जानते उत्तपत्ति मेरी कब हुई।
जाने भला कैसे सभी यह सृष्टि जब मुझसे हुई ॥२॥

मूल

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

हिं० पद्य २

मुझको चतुर्दश भुवन का स्वामी बड़ा जो मानता ।
मुझको अनादि तथा अजन्मा पार्थ जो है जानता ॥
होता वही है मुक्त पापों से नहीं प्राणी सभी ।
मद मोह आदिक दूर होते प्राप्त होता ज्ञानभी ॥३॥

मूल

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

हिं० पद्य ३

सुख दुःख शम दम भव प्रलय ये दया अभयभय ज्ञानके ।
समता अहिंसा तुष्टि तप यश अयश आदिक दान के ॥४॥
जो भाव नाना भांति के सब प्राणियों में दीखते ।
वह हैं हुए उत्पन्न मुझसे सब मुझी से सीखते ॥५॥

मूल

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

हि० पद्य ४

मनुदेव सप्त महर्षि उनके पूर्व के चारो तथा।
सब जान मेरे भाव जिनसे है चली लोक प्रथा ॥६॥
जो जानते हैं योग और विभूति के इस तत्व को।
वह योग-युत होते कभी होते न प्राप्त ममत्व को ॥७॥

मूल

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

हिं० पद्य ५

में जन्मदाता हूं सभी का सब मुझी से हैं हुए।
यह जान ज्ञानी जन मुझे भजते महा हर्षित हुए ॥८॥
मन प्राण तन मुझ में लगा कहते हुए मेरी कथा।
रमते मुझी में नित्य वह सन्तुष्ट होकर सर्वथा ॥६॥

मूल

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११

हिं० पद्य ६

भजते मुझे हैं योग युत हो प्रेम से जो सर्वदा।
मैं बुद्धि देता वह उन्हें जिससे मुझे पाते सदा ॥१०॥
अज्ञान जनित विकार-तम को ज्ञान दीप प्रकाश से।
मैं दूर करता हू न वे बँधते कभी भव-पाश में ॥११॥

अर्जुन उवाच मूल

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३

अर्जुन बोला हिं० पद्य ७

हो परम पावन परम् ब्रह्म पवित्र जग के नाथ हो।
हो परम धाम प्रभो ! अनाथों के तुम्ही इक नाथ हो॥१२॥
हो सर्व व्यापी सर्व विभु अज नित्य यह् कहते सभी।
ऋषि मुनि सकल देर्वाष नारद असित देवल व्यास भी॥१३॥

मूल

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

हिं० पद्य ८

कहते नहीं हो तुम स्वयं भी सत्य मैं सब जानता।
भगवन्! तुम्हारी शक्ति व्यक्ति देव दानव जानता ॥१४॥
हे सृष्टिकर्ता देव देव जगत्पते भूतेश हे ! ।
तुम जानते हो आपको अपने स्वयं प्राणेश हे ॥१५॥

मूल

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

हिं० पद्य ९

कृपया कहो मुझसे प्रभो निज परम दिव्य विभूतियां ।
तुम व्याप्त हो सर्वत्र जिनसे कौनसी वह शक्तियां ॥१६॥
चिन्तन तुम्हारा कर सदा कैसे तुम्हें मैं जानलूं ।
किस वस्तु में चिन्तन करूं कैसे तुम्हें पहचानलूं ॥१७॥

मूल

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथयतृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८

श्री भगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१६

हिं० पद्य १०

योगिन् ! कृपाकर योग और विभूतियां मुझसे कहो ।
होती नहीं है तृप्ति सुनकर फिर कहो सन्तोष हो ॥१८॥
भगवान ! तब निज मुख्य मुख्य विभूतियां कहने लगे ।
सुनने लगा कुरु श्रेष्ठ भाषण सरस अमृत में पगे ॥१६॥

मूल

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

हिं० पद्य ११

सर्वत्र रहता हूं सदा मैं वासुदेव अनन्त हूं ।
सब प्राणियों का आदि मैं हूं मध्य मैं ही अन्त हूं ॥२०॥
मैं ष्णिु रविओं में प्रकाशों में प्रकाश दिनेश हुं।
मैं मरुत मध्य मरीचि तारा-चक्र में राकेश हूं ॥२१॥

मूल

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२
रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३

हिं० पद्य १२

मैं देव गण में इन्द्र हूं हूं श्याम वेदों में तथा ।
मैं चेतना हूं प्राणियों में इन्द्रियों में मन तथा ॥२२॥
मैं यक्ष राक्षस असुर गण के बीच मान्य धनेश हूं ।
मैं पर्वतो मे मेरु रुद्रोमें प्रसिद्ध महेश हूं ॥२३॥

मूल

पुरोधसां च मुख्यं मा विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

हिं० पद्य १३

मैं अग्नि वसुओं बीच सेनानायकों में स्कन्द हूं ।
हे पार्थ ! मैं गुरुवर बृहस्पति कुलपुरोहित चंन्द हूं ॥
मैं हूं समुद्र जलाशयों में भृगु मान्य ऋषियों में तथा।
जप यज्ञ यज्ञों में हिमालय स्थावरों में हूं तथा ॥२४-२५॥

मूल

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।२६
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

हिं० पद्य १४

ओंकार वचनो में समझ तू कपिल सिद्धों में मुझे।
उच्चैश्रवा निकला जलधि से जान अश्वों में मुझे ॥
अश्वत्थ वृक्षों में मनुष्यों में महान नरेन्द्र हूं।
मैं वीर ऐरावत गजेन्द्रों में विशाल गजेन्द्र हूं ॥२६-२७॥

मूल

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।२८
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

हिं० पद्य १५

नारद समझ देवर्षियों में वज्र शस्त्रों में मुझे।
वासुकि भुजंगन बीच कामद धेनु गायों मे मुझे ॥
मैं चित्ररथ हूं गायकों में सृष्टि कर्ता काम हूं।
जल प्राणियों में वरुण आयुध धारियों में राम हूं ॥२८-२९॥

मूल

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥
पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ३१

हिं० पद्य १६

मैं हूं अकार सुअक्षरों में भक्षकों में काल हूं ।
मैं पक्षियों में गरुड पशुओं में मृगेन्द्र विशाल हूं ॥
तू जान नागों में अनन्त नियमकों मे यम मुझे ।
प्रह्लाद दैत्यों में मकर तूजान मत्स्यों में मुझे ॥३०-३१॥

मूल

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२

हिं० पद्य १७

द्रुतगामियों में वायु गंगा जान नदियों में मुझे ।
अध्यात्म विद्या सकलविद्या मध्य जानों तुम मुझे ॥

इस सृष्टिका मैं आदि हूं मैं मध्य हूं मैं अन्त हूं ।
वाद में सिद्धान्त मैं हूं अमिट काल अनन्त हूं ॥३२॥

मूल

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ।३३
मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिःश्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥

हिं० पद्य १८

मैं हूं विधाता सर्वतोमुख मृत्यु हूं संहारिणी ।
जो नष्ट करती सृष्टिको होती प्रलय लय कारिणी ॥
मैं बीज भावी सृष्टि का हूं पितृ गण में अर्यमा ।
बुद्धि वाणी स्मृति कीर्ति लक्ष्मी मैं नारियों में हूं क्षमा। ३३-३४

मूल

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५।

हिं० पद्य १६

मैं छन्द गायत्री समासों में सु-द्वन्द्व समास हूं।
द्वादश महीनों में सु-पावन मार्गशीर्ष सुमास हूं॥
मैं साम में हूं बृहत्साम प्रसिद्ध जिसकी है कथा।
मैं बीज भावी सृष्टि का ऋतुराज ऋतुओं में तथा॥३५॥

मूल

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥३७

हिं० पद्य २०

मैं द्यूत छलियों में धनंजय पाण्डवों में वीर हूं।
कविश्रेष्ठ शुक्राचार्य कवियों में प्रवीण सुधीर हूं॥
तेजस्वियों का तेज तत्त्वज्ञानियों का तत्त्व हूं।
मैं विजय निश्चय सत्त्वशीलों सात्त्विकों का सत्त्व हूं॥३६-३७।

मूल

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम ॥३८
यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।३६

हिं० पद्य २१

मैं शाशकों का दण्ड हूं मैं ज्ञानियों का ज्ञान हूं ।
मैं यादवों में वासुदेव सुध्यानियों का ध्यानहूं ॥
सब प्राणियों का बीज मुनियों में महामुनि व्यास हूं ।
रहता चराचर विश्व के सब प्राणियों के पास हूं ॥३८-३६॥

मूल

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥

हिं० पद्य २२

मेरी अनन्त विभूतियों का अन्त मिल सकता कहां ।
संक्षेप से मैंने परंतप! है कहा तुझ से यहां ॥४०॥
इस सृष्टि में जो वस्तुएँ श्रीयुक्त वैभव युक्त हैं ।
यह सब हुई मुझ से इसे जो जानते वह मुक्त हैं ॥४१॥

मूल

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

हिं० पद्य २३

अर्जुन! चराचर जगत मेरा अंश एक समान है।
मुझसे अलग कुछ भी नहीं यह वेद वाक्य प्रमान है।
यह विश्व सारा विश्वपति का एक चरण महान है।
त्रैपाद स्थित हैं स्वयं जो जगत ज्योति प्रधान है ॥४२॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुनसंवादे विभूति योगोनाम दशमोऽध्यायः ॥

॥ अथैकादशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

अर्जुन बोला हिं० पद्य १

करके कृपा जो आपने मुझ से कही पावन कथा ।
सुनकर उसे जाता रहा तम-मोह मेरा सर्वथा ॥१॥
हे कमल लोचन ! आपने कृतकृत्य मुझको करदिया ।
। माहात्म्य पावन सफल जीवन करलिया ॥२॥

मूल

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

हिं० पद्य २

वर्णन किया है आपने हे नाथ ! जिस निज रूपका ।
दर्शन किया मैं चाहता हूं आपके उस रूपका ॥३॥
यदि देख सकता हूं प्रभो ! वह रूप तो दिखलाइये ।
प्रभु दीजिये वह शक्ति यदि असमर्थ मुझको पाइये ॥४॥

श्री भगवानुवाच मूल

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

श्री भगवान ने कहा हिं० पद्य ३

भगवान ने यों देख श्रद्धा पार्थ की उससे कहा ।
देखो सहस्रों रूप मेरे जो अलौकिक हैं महा ॥५॥

देखो मरुद्गण रुद्र वसु आदित्य हैं मुझमें सभी।
जो हैं अपूर्व जिन्हें न इसके पूर्व देखा था कभी ॥६॥

मूल

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

हि० पद्य ४

देखो चराचर विश्व प्राणी आज मेरी देहमें।
देखो सभी जो चाहते हो देखना इस देह में ॥७॥
इन चक्षुओं से योग मेरा दीख सकता है नहीं।
देता तुम्हें मैं दिव्य चक्षु न भटक सकता जो कहीं ॥८॥

संजय उवाच–मूल

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

संजय बोला—हिं० पद्य ५

यों कह महेश्वर ने दिखाया उस ईश्वरीय स्वरूपको।
तब पार्थ ने देखा स-भूषण देव दुर्लभ रूपकी ॥९॥
देखे सहस्रों दृश्य अद्भुत नेत्र मुख गिनती नहीं।
देखे अनेकों शस्त्र उपमा दीखती जिनकी नहीं ॥१०॥

मूल

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

हिं० पद्य ६

देखे अनेकों आभरण जगमगात जो अति दिव्य थे।
उस पार्थ ने अब तक कभी देखे न ऐसे दृश्य थे ॥
आती सुगन्ध सुहावनी सर्वत्र दृश्य वसन्त था।
था रूप क्या! आश्चर्य उसका आदि मध्य न अन्त था॥११

मूल

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः १२
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

हिं० पद्य ७

यदि एक साथ सहस्र रवि होते उदय आकाश में ।
तो भी ठहर सकते न उनके दिव्य तेज प्रकाश में ॥१२॥
छायी प्रभा प्रभु देह में थी तेज था सर्वत्र ही ।
देखा विभक्त समस्त भूमण्डल वहां एकत्र ही ॥१३॥

मूल

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ ॥१५॥

हि० पद्य न

यह दृश्य देखि हुआ धनंजय चकित पुलकित हो रहा।
कर जोर नतशिर हो तुरत भगवान से उसने कहा ॥१४॥
हे देव ! सुरगण आपकी इस देह में हैं दीखते।
सब विश्वप्राणी नाग ऋषिगण ब्रह्म भी हैं दीखते॥१५॥

मूल

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

हिं० पद्य ६

मुख उदर बाहु अनेक आखों युक्त रूप अनन्त हैं।
मिलता न आदि न मध्य लखता आप का नहि अन्त है।
मैं देखता हूं आपको ही आपही सर्वत्र हैं।
जगदीश! मुझको देव दानव दीखते एकत्र हैं ॥१६॥

मूल

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

हिं० पद्य १०

सब ओर से ही जगमगित रवि अग्नि द्युति धारण किये।
स-किरीट तेज समूह सुन्दर चक्र और गदा लिये॥
जो अप्रमेय स्वरूप जिसका देखना दुस्तर महा।
मैं देखता हूं आपके उस रूपको प्रभुवर अहा ॥१७॥

मूल

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं

त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता

सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

हिं० पद्य ११

अव्यय सनातन पुरुष शाश्वत धर्म रक्षक आप हैं।
मैं समझता हूं विश्व परम निधान अक्षर आप हैं॥
देखकर यह रूप भगवन्! चित्त में आता यही।
हैं व्यर्थ जगमें वस्तु सब उपमा न कोई है कहीं॥१८॥

मूल

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-

मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं

स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

हिं० पद्य १२

जो शक्ति शाली है न जिसका आदि मध्य न अन्त है।
शशि सूर्य जिसके नेत्र एवं उदर बाहु अनन्त हैं॥
मुख अग्नि जिसका जो तपाता विश्व को निजतेजसे।
उस आपको मैं देखता हूं आपके ही तेजसे ॥१९॥

मूल

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

हिं० पद्य १३

आकाश पृथ्वी बीच का अन्तर भरा है आपसे।
सारी दिशाये व्याप्त मुझ को दीखती हैं आपसे॥
यह देख करके उग्र अद्भुत रूप भगवन् आपका।
हैं लोक तीनों कांपते भय मानते सब आपका ॥२०॥

मूल

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ।२१।

हि० पद्य २१

ये देवताओं के समूह प्रवेश करते आपमें ।
सब देव दानव आरहे हैं जारहे हैं आपमें ॥
कितने खडे करजोड़ कर हैं गारहे गुण आपके।
कर स्वस्ति सिद्ध महर्षि करते हैं विनय बहु आपके ॥२१॥

मूल

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

हि० पद्य १५

गन्धर्व यक्ष मरुत पितर वसु रुद्र विश्वे देव भी ।
आदित्य राक्षस सिद्ध साध्य कुमार अश्वनि देव भी ॥
हैं चकित सब की दृष्टि भगवन्! आपकी ही ओर ज्यों।
फिर भी किसी को आपका मिलता न अंत न छोर त्यों ॥२२॥

मूल

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।२३

हि० पद्य १६

मुखनेत्र जंघा पांव उदर अनेक बाहें दीखतीं ।
विकराल रूप विशाल डाढ़ें भी भयंकर दीखतीं ॥
घबड़ा उठे भय से सभी हैं देव दानव कांपते ।
मेरी दशा भी है वही सब अंग मेरे कांपते ॥२३॥

मूल

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

हिं० पद्य १७

आकाश पृथ्वी व्याप्त नाना वर्ण रंजित रूप को ।
मुख नेत्र जो अति दीप्त हैं भयभीत ऐसे रूप को ॥
मन देख कर घबड़ा उठा है धैर्य शान्ति न शेष है ।
योगेश ! बुद्धि न है ठिकाने ज्ञान लेश न शेष है ॥२४॥

मूल

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

हिं० पद्य १८

प्रलयाग्नि सम मुख हैं महा विकराल इनको देखकर।
मैं ज्ञान शून्य हुआ दिशायें सूझती न विशेषकर ॥
हे देव देव ! जगन्निवास !! प्रसन्न अब हो जाइये ।
विकराल रूप हटाइये अब शान्ति रूप दिखाइये ॥२५॥

मूल

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

हिं० पद्य १६

धृतराष्ट्र -सुत दल मुख्य सैनिक दीप्त मुखमें जारहे।
योधा हमारी ओर के भी देखिये यह जारहे ॥२६॥
कुछ लोग दांतों में फसे वह जो महा विकराल हैं।
सिर चूर कितनों के हुए कितने हुए बेहाल हैं ॥२७॥

मूल

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

हिं० पद्य २०

जाती सभी नदियां सवेग समुद्र ही की ओर ज्यों।
हैं इन मुखों में जारहे नरलोक के यह वीर त्यों ॥२८॥
ज्यों कूद पड़ते हैं पतङ्ग काल वश हो आग में।
त्यों जारहे हैं वीर मरने के लिये मुख भागमें ॥२९॥

मूल

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

हिं० पद्य २१

जलते मुखों से निगल कर सबको प्रभो सब ओर से।
हैं आप जिह्वा चाटते इस ओर से उस ओर से॥
निज तेज से सारे जगत को आपने है भरदिया।
है आपकी जलती प्रभाने व्यग्र जग को करदिया ॥३०॥

मूल

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

हिं० पद्य २२

मुझ पर कृपा अब कीजिये हैं कौन आप बताइये ।
है बार बार प्रणाम मेरा भय समूल भगाइये ॥
है आदि आप परन्तु कौन ! प्रभो पता लगता नहीं।
यह कर रहे हैं आप क्या ! आता समझमें कुछ नहीं ॥३१॥

श्री भगवानुवाच मूल

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

श्री भगवान ने कहा हिं० पद्य २३

मैं लोक भक्षक प्रलयकारी नाशकारी काल हूं ।
संसार के संहार में रत काल मैं विकराल हूं ॥
रिपु-सैन्य के सब वीर पार्थ ! अवश्य मारे जायगे ।
मारो इन्हें तुम या नहीं सब कर्म फलतो पायगे ॥३२॥

मूल

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

हिं० पद्य २४

अतएव उठजाओ करो यशलाभ भोगो राज्यको ।
हे सव्यसाचिन् ! युद्ध करके जीतलो संम्राज्यको ॥
जीते नहीं समझो सभी रिपु मरचुके हैं जानलो ।
हे वीर पार्थ ! निमित्तमात्र बनो यही सिख मानलो ॥३३॥

मूल

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

हिं० पद्य २५

ये द्रोण कर्ण तथा जयद्रथ वीर जितने हैं यहां।
सब मर चुके हैं भीष्म आदिक भाग सकते वह कहां॥
क्या हार सकते हो कभी रिपु जीत तुम विख्यात हो।
हे पार्थ! व्याकुल हो न तू कर युद्ध विजय प्रख्यात हो ॥३४॥

संजयउवाच मूल

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

संजय बोला—हिं० पद्य २६

अविवेकता वश कृष्ण का वह रूप लख पड़ता नहीं।
धृतराष्ट्र ! वाणी नेत्र भी हैं थकित उपमा है नहीं॥
तब पार्थ ने कँपते हुए करजोर गद्गद् हो कहा।
सिरपर किरीट सुहावना था पार्थ के सुन्दर महा॥३५॥

अर्जुन उवाच मूल

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥३६॥

अर्जुनबोला हिं० पद्य २७

अनुरक्त होता विश्व कीर्तन आपका करके अहा।
चहु ओर राक्षस भागते हैं त्रसित हो हो कर महा॥
समुदाय सिद्धों के सकल हैं आप को नमते प्रभो।
यह उचित ही है आप हैं जगदीश निर्गुण हे विभो॥३६॥

मूल

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

हिं० पद्य २८

क्यों कर प्रणाम करें नहीं जब आप सबसे हैं बड़े ।
हैं आदि कारण आप ब्रह्मा के तथा उससे बड़े ॥
हे हे अनन्त जगन्निवास सुरेश आदिक आपही ।
जड़ जीव भी हैं आप अक्षर ब्रह्म भी हैं आपही ॥३७॥

मूल

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

हिं० पद्य २६

हैं आदि देव पुराण पुरुष प्रसिद्ध आप महा प्रभो।
हैं ज्ञेय ज्ञाता विश्व परम निधान धाम महा प्रभो॥
हे विश्वरूप अनंतरूप जगन्नियंता यदुपते।
यह विश्व सारा आप से ही है भरा मायापते ॥३८॥

मूल

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते

हिं० पद्य ३०

यम वायु पावक वरुण चन्द्र तथा प्रजापति आप हैं।
हैं आप जगदाधार प्रपितामह महामति आप हैं॥
सादर सहस्रों बार प्रभुवर! कोटि कोटि प्रणाम है।
फिर भी सश्रद्धा पद-कमल में बार बार प्रणाम है॥३६॥

मूल

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

हिं० पद्य ३१

सब ओर आगे और पीछे आप लीला धाम हैं ।
सब ओर से ही आप को अतएव नाथ प्रणाम हैं ॥
हे नाथ आप अनन्तवीर्य अनन्त शक्ति प्रसिद्ध हैं ।
सर्वत्र ही है व्याप्त इससे आप सर्व स्वसिद्ध हैं ॥४०॥

मूल

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

हिं० पद्य ३२

मैंने कहा अनुचित महा जो आपको प्रिय जानकर।
हे कृष्ण! हे यादव!! सखे इत्यादि अति अपमान कर॥
उनको प्रभो सब भूलसे या प्यार से मैंने कहा।
मैं हूं क्षमा प्रार्थी हुआ अपराध मुझ से यह महा ॥४१॥

मूल

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

हिं० पद्य ३३

चलते चलाते बैठते सोते समक्ष अकेल भी।
अपमान मैंने यदि किया हो आपका अच्युत! कभी॥
चाहे हँसी या खेल में ही वह हुआ हों क्यों नहीं।
मैं हूं क्षमा प्रार्थी प्रभो होगा कभी ऐसा नहीं ॥४२॥

मूल

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

हिं० पद्य ३४

गुरु श्रेष्ठ पूज्य पिता चराचर विश्व के हैं आपही ।
त्रैलोक में कोई न आप समान हैं बस आपही ।
उपमा न कोई दीखती जब खोजने से भी यहां ।
कोई मिलेगा आप से बढ़कर भला सम्भव कहां ॥४३॥

मूल

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

हिं० पद्य ३५

मैं आपको प्रभुवर रिझाना चाहता हूं प्रेम से।
साष्टांग सादर कर प्रणाम सुरीति से शुचिनेम से॥
करके कृपा हे नाथ अब कर दीजिये मुझको क्षमा।
सुत को पिता प्रिय मित्र को ज्यों मित्र करदेता क्षमा॥४४॥

मूल

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥४५॥

हिं० पद्य ३६

इस रूप से होता मुझे आनन्द अपरम्पार है।
मन हो रहा है व्यथित भय से कांपता संसार है॥
हे देव देव जगन्निवास प्रसन्न अब हो जाइये।
यह विश्व रूप हटाइये पुनि देव रूप दिखाइये॥४५॥

मूल

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्तें ॥४६॥

हिं० पद्य २७

कर में गदा शुभ चक्र हो सिर पर किरीट सुहावना।
मैं चाहता हूं देखना फिर पूर्व रूप लुभावना ॥
उस रूपको ही विश्वमूर्तें आप धारण कीजिये ।
दर्शन चतुर्भुज रूप धारि सहस्रबाहो दीजिये ॥४६॥

श्री भगवानुवाच मूल

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

श्री भगवान ने कहा हिं० पद्य ३८

होकर प्रसन्न तुम्हें दिखाया रूप जो मैंने अभी ।
इसको किसीने पूर्व इसके था नहीं देखा कभी ॥
यह पार्थ ! तेजोमय अनन्त विशाल मेरा रूप है ।
मैंने दिखाया योग बल से विश्वरूप अनूप है ॥४७॥

मूल

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥
मा तेव्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

हिं० पद्य ३९

तप यज्ञ अरु स्वाध्याय यद्यपि दान कर्म करके भले ।
संभव नहीं नरलोक में कोई इसे फिर देखले ॥४८॥

हो व्यथित मूढ़ न रूप मेरा यह भयंकर देखकर।
देखो वही फिर रूप हो निर्भय प्रसन्न विशेषकर ॥४९॥

संजयउवाच मूल

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

अर्जुनोवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

संजय बोला—हिं० पद्य ४०

यों कह दिखायो कृष्ण ने फिर रूप अर्जुन को वही।
हो सौम्य रूप दिया दिलासा पार्थ को तत्काल ही ॥५०॥

अर्जुन बोला

इस सौम्य मानव रूपको मैं देख स्वस्थ हुआ प्रभो।
आई ठिकाने बुद्धि मेरी शान्तचित्त हुआ विभो ॥५१॥

श्रीभगवानुवाच मूल

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ।।५२
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।५३।।

श्रीभगवानने कहा हिं० पद्य ४१

दुर्दर्श है यह रूप देखा है यहां तुमने जिसे ।
सब देव गण भी तरसते हैं देखने को नित इसे ।।५२।।
तप दान से या यज्ञ अरु स्वाध्याय से देखे मुझे ।
तुमने नहीं देखा कभी जिस भांति देखा है मुझे ।।५३।।

मूल

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।।५४।।

हिं० पद्य ४२

मैं दीख पड़ता जानपड़ताहूं धनंजय भक्ति से ।
मैं तत्व से ही प्राप्त होता हूं न दूजी शक्ति से ।।

जिसका परम उद्देश्य मैं ही हूं न दूजा लक्ष है।
निर्वैर जो रहता सभी से सर्वदा निष्पक्ष है ॥५४॥

मूल

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

हिं० पद्य ५३

जो कर्म करता है सभी है पार्थ मेरे ही लिये।
रहता न जिसमें तनिक भी आसक्ति औरों के लिये ॥
वह प्राप्त करता है मुझे इसमें न संशय लेश है।
पाता नहीं आवागमन का फिर कभी वह क्लेश है ॥५५॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शन योगोनामैकादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

अर्जुन बोला हिं० पद्य १

सुन्दर सगुण इस रूप में कुछ आपको हैं पूजते ।
कुछ प्रेम से अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म को हैं पूजते ॥
है श्रेष्ठ इनमें कौन दोनों आपके ही भक्त हैं ।
कुछ मानते हैं व्यक्त तो कुछ मानते अव्यक्त हैं ॥१॥

श्री भगवानुवाच-मूल

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥
येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

श्रीभगवान ने कहा हिं० पद्य २

करते भजन मेरा सदा थिर चित्त कर जो चावसे ।
हैं श्रेष्ठ योगी पार्थ ! वह जो भक्ति करते भावसे ॥२॥
जो पूजते हैं ब्रह्म को जो सर्वव्यापी अचल हैं ।
अव्यक्त अक्षर अकथनीय अचिन्त्य अज अरु अमल हैं ॥३॥

मूल

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

हिं० पद्य ३

सर्वत्र ही समदृष्टि रखकर इन्द्रियों को रोककर ।
जो लोक हितकर कार्य करते चित्तका अनुरोधकर ॥
वह पूजते उस ब्रह्म को जो सर्वव्यापी नित्य है ।
अव्यक्त अविनाशीअचल सुस्थिर दयालु अचिन्त्य है ॥४॥

मूल

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

हिं० पद्य ४

उस ब्रह्म के वह सब उपासक प्राप्त होते हैं मुझे ।
इसमें नहीं संशय सुनो सैंसत्य कहता हूं तुझे ॥
पर दुःख वह पाते बहुत अव्यक्त के जो भक्त हैं ।
है कठिन उनको जानना अव्यक्त को जो व्यक्त हैं ॥५॥

मूल

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

हिं० पद्य ५

हे पार्थ सब आशा भरोसा त्याग मुझपर रख सदा ।
निज कर्म कर अर्पण मुझे भजते मुझे जो सर्वदा ॥
करते सदा जो ध्यान मेरा प्रिय मुझे ही जानते ।
सब नेह नाता तोड़ जो सर्वस्व मुझको मानते ॥६॥

मूल

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामिनचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

हिं० पद्य ६

हे पार्थ ! उनका चित्त दृढ़ रमता मुझी में सर्वदा ।
भवसिन्धु से उद्धार उनका शीघ्र करता मैं सदा ॥७॥
मनको लगा मुझ में मुझे सर्वस्व अपना मानलो ।
देहान्त पीछे वास मुझ में तुम करोगे जानलो ॥८॥

मूल

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोपि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥९॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

हिं० पद्य ७

यदि चित्त मुझ में थिर नहीं है आज ऐसा मानलो ।
अभ्यास से ही हे धनंजय प्राप्त करना ठानलो ॥९॥

अभ्यास कर सकते नहीं तो कर्म कर मेरे लिये।
पर कर्म हो निष्काम होगी मुक्ति वर तेरे लिये ॥१०॥

मूल

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् १२

हिं० पद्य ८

तुमसे न यह भी हो सके तो शरण ही मेरी गहो।
तजकर फलाशा कर्म करके मोक्ष पद पावन लहो ॥११॥
अभ्यास से तो ज्ञान उत्तम ज्ञान से भी ध्यान है।
पर ध्यान से भी कर्मफल के त्याग का बहुमान है ॥१२॥

मूल

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

हिं० पद्य ९

जो मित्र है सब प्राणियों का दुःख सुख सम जानता।
अभिमान ममता त्याग सब से नेह नाता मानता ॥
रखता दया सब पर किसी से द्वेष जो करता नहीं ।
करुणा क्षमा हैं शस्त्र जिसके क्रोध जो करता नहीं ॥१३॥

मूल

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४

हिं० पद्य १०

जो सर्वदा सन्तुष्ट दृढ़ निश्चय तथा है उद्यमी ।
मन बुद्धि कर अर्पण मुझे जो बन गया है संयमी ॥
बस वह मुझे ही चाहता मैं भी उसेही चाहता ।
हैं चाहते उसको सभी वह है सभी को चाहता ॥१४॥

मूल

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः १६

हिं० पद्य ११

ज़िससे न डरते लोग जो डरता न लोगों से तथा।
वह प्रिय मुझे है मुक्त हर्ष विषाद से जो सर्वथा॥१५॥
सन्तुष्ट आलस हीन ज्ञानी जो न दंभी भक्त है ।
तजकर फलाशा कर्म जो करता वही प्रिय भक्त है॥१६॥

मूल

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः समे प्रियः॥१७

हिं० पद्य १२

जो हर्ष से हर्षित न होता दुःख से दुःखित नहीं ।
संयोग और वियोग में लखता जिसे अन्तर नहीं ॥
जो चाहता कुछ भी नहीं शुभ अशुभ फल सम मानता।
जिसके हृदय में भक्ति है मैं प्रिये उसे ही जानता ॥१७॥

मूल

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

हिं० पद्य १३

जिसके लिये सम दुःख सुख रिपु मित्र शीतल गर्म हैं।
अपमान मान समान है समभाव जिसके धर्म हैं॥
सब प्राणियों के साथ रहकर भी न जो आसक्त है ।
वह प्रिय मुझे है भक्ति करता प्रेम से जो भक्त है॥१८॥

मूल

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९

हिं० पद्य १४

निन्दा बड़ाई समजिसे है मौनव्रत जिसने लिया।
सन्तुष्ट जो रहता उसीमें दैव ने जो कुछ दिया ॥
जो है व्यग्रस्थित चित्त सुस्थिर बुद्धि अरु अनिकेत है।
वह प्रिय मुझे है भक्त जो निष्काम करता हेत है ॥१९॥

मूल

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

हिं० पद्य १५

पूर्वोक्त धर्मामृत यहां हे पार्थ ! जो मैंने कहा ।
आचरण करते हैं इसे हो मत्परायण जो अहा ॥
वह भक्त मेरे हैं मुझे अत्यन्त प्रिय सच्चे सही ।
तुम भक्त बन जाओ इसीसे यह कथा मैंने कही ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुन संवादे भक्ति योगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

हिं० पद्य १

इस देह को ही क्षेत्र कहते हैं धनंजय जानलो ।
जो जानता इसक्षेत्र को क्षेत्रज्ञ उसको मानलो ॥१॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रों में मुझे जानो यही सद् ज्ञान है ।
भारत समझना क्षेत्र अरु क्षेत्रज्ञ को यह ज्ञान है ॥२॥

मूल

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥३॥

हिं० पद्य २

है क्षेत्र कैसा कौन उसके कौन कौन विकार हैं।
उत्पन्न होता कौन किसके यह सुगूढ़ विचार हैं॥
है कौन वहक्षेत्रज्ञ उसका क्या महान प्रभाव है।
संक्षेप से सुन पार्थ! जो कुछ बात है जो भाव है॥३॥

मूल

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥४॥

हिं० पद्य ३

बहु भांति ऋषियों ने कहा है विविध छन्दों में इसे।
सब कार्य कारण युक्ति युत सब भांति गाया है जिसे॥
यह ब्रह्मसूत्रों के पदों में है सबतरह गाया गया।
भ्रम लेश है जिसमें नहीं जो मान्य है माना गया॥४॥

मूल

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥५॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

हिं० पद्य ४

दश इन्द्रियां मन महाभूत मदादि पाँचो विषय भी ।
संघात इच्छा बुद्धि सुख दुख चेतना धृति द्वेष भी ॥
जो तत्व हैं इनसे बना सविकार काया क्षेत्र हैं ।
यह जानता है पार्थ ! जिसके ज्ञान रूपी नेत्र हैं ॥५-६॥

मूल

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

हिं० पद्य ५

पाखण्ड मान न चाहना थिरता अहिंसा सरलता ।
आचार्य सेवा आत्मनिग्रह शान्ति शौच स्वभावता ॥७॥

होना विरक्त न गर्व करना दुख हटाना नेहके ।
यह जानना हैं दोष जन्म जरा मरण दुख देहके ॥८॥

मूल

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

हिं० पद्य ६

होना नहीं आसक्त पत्नी पुत्र गृह परिवार में ।
पड़ना न उनके सुखद दुःखद प्रेम पारावार में ॥
चाहे विपत्ति पड़े महा या राज्य मन चाहा मिले ।
सम भावना रहना शान्त चाहे सुख मिले या दुख मिले ॥९॥

मूल

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

हिं० पद्य ७

शुचि शान्ति प्रिय एकान्त प्रिय होना न भीड़ पसन्द हो।
रहना न उनके साथ जिनकी बुद्धि गति मति मन्द हो ॥१०
अध्यात्म ज्ञान न भूलना नित तत्त्व ज्ञान विचारना।
मुझमें अटल नित भक्ति रख मद मोह रिपु को मारना ॥११

मूल

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥
सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

हिं० पद्य ८

कहते इसे ही ज्ञान ऐसा पार्थ मेरा ध्यान है।
जो कुछ तुम्हें अतिरिक्त इसके दीखता अज्ञान है॥
अब मैं बताता हूं तुझे सुन ज्ञेय कहते हैं किसे।
है प्राप्त अमृत-मोक्ष होता जान लेने से जिसे॥

(६)

सत् भी उसे कहते नहीं कहते असत् भी हैं नहीं।
जड़ जीव दोनों के परे परब्रह्म है मानव नहीं ॥
कर पांव आखें कान सिर चहुं ओर मुख उसके सही।
अव्यक्त होकर भी सदा है व्याप्त वह सर्वत्र ही ॥१२-१३॥

मूल

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४

हिं० पद्य १०

इन्द्रिय न उसके हैं यद्यपि आश्चर्य ही है होरहा।
पर इन्द्रियों के गुण सभी हैं दीखते उसमें अहा ॥
बन्धन रहित होकर स्वयं करता जगत की सृष्टि है।
उसके नहीं हैं नेत्र पर अति तीव्र उसकी दृष्टि है ॥१४॥

मूल

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६

हिं० पद्य ११

स्थूल सूक्ष्म है सही वह दूर भी है पास भी ।
अखण्ड होकर अंश हो करता सभी में वास भी ॥१५॥
जंगम स्वयं स्थावर स्वयं है ज्ञेय भी अज्ञेय भी ।
कर्ता स्वयं हर्ता स्वयं वह ध्येय भी है श्रेय भी ॥१६॥

मूल

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१७
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

हिं० पद्य १२

वह तेज का भी तेज है वह ज्ञेय भी है ज्ञान भी ।
धाता अधिष्ठाता स्वयं ही ध्येय भी है ध्यान भी ॥१७॥

ज्ञानादि के सम्बन्ध में मैंने यहां जो कुछ कहा।
समझो इसे फिर प्राप्त होगा परम पद पावन महा ॥१८॥

मूल

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

हिं० पद्य १३

हैं प्रकृति पुरुष अनादि दोनों पार्थ! ऐसा जानलो।
गुण दोष हैं उत्पन्न होते प्रकृति से यह मानलो ॥१९॥
इस देह का कारण प्रकृति है कर्म करवाती वही।
सुख दुःख पड़ना भोगना इसका पुरुष कारण सही ॥२०॥

मूल

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

हिं० पद्य १४

रह कर प्रकृति में पुरुष करता इन गुणों का भोग है।
यह भोग ही उसके लिये होता धनंजय रोग है॥
अच्छी बुरी जो योनियो में जन्म होता है कभी।
है मुख्य कारण पार्थ! उसका प्रकृति के यह गुण सभी॥२१

मूल

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥२२

हिं० पद्य १५

पालक स्वयं भोक्ता स्वयं साक्षी स्वयं जो देह में।
देता स्वयं अनुमति सदा रह देह रूपी गेह में॥
परब्रह्म परमात्मा महेश्वर सब उसी के नाम हैं।
उसकी कृपा से विश्व के चलते सदा सब काम हैं॥२२॥

मूल

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते॥२३॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

हिं० पद्य १६

इस पुरुष को अरु प्रकृति को जो त्रिगुणों से युक्त हैं ।
जो जानता है शीघ्र होता जन्म बन्धन मुक्त है ॥२३॥
कुछ लोग अपने आपमें ही देखते मन ध्यान से ।
कुछ शुद्ध अन्तःकरण करके देखते हैं ज्ञान से ॥२४॥

मूल

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥
यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

हिं० पद्य १७

कुछ लोग ऐसे भी जगत में देखते सुनते वही ।
करते सश्रद्धा भक्ति होते मुक्त भव-बन्धन सही ॥२५॥

जड़ जीव जंगम सृष्टि में जो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं।
वह क्षेत्र अरु क्षेत्रज्ञ के संयोग के फल पार्थ! है॥२६॥

मूल

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥२७

हिं० पद्य १८

सब प्राणियों में पार्थ! जो रहता सदा सम भाव है।
होता न उसका प्रलय के पश्चात् पार्थ अभाव है॥
जिसने उसे देखा वही पण्डित वही ज्ञानी महा।
पाया उसी ने सत्य-पथ ऋषि मुनि सभी ने है कहा॥२७॥

मूल

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

हिं० पद्य १९

चलकर कुपथ पर जो न करता आप अपना घात है।
जो जानता सर्वत्र ही सम भाव ईश्वर व्याप्त है॥

करता भजन जो प्रेम से चलता सदा सन्मार्ग पर ।
मिलता उसे ही परमपद होता महा कल्याणकर ॥२८॥

मूल

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२६॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थ मनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

हि० पद्य २०

आत्मा अकर्ता कर्म करती प्रकृति जो यह जानता ।
पण्डित वही ज्ञानी वही है सत्य को पहचानता ॥२६॥
हैं भूत यद्यपि भिन्न भिन्न तथापि अर्जुन ! एक हैं ।
उस एक से विस्तार हो होते असंख्य अनेक हैं ॥३०॥

मूल

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

हिं० पद्य २१

जब दीखने ऐसा लगे तब ब्रह्म होता प्राप्त है ।
जोनित्य थिर होकर अजन्मा विश्व भर में व्याप्त है ॥
कौन्तेय! यह अव्यक्त परमात्मा न करता कुछ कभी ।
इस देह में रहता यदपि बन्धन न लगता पर कभी ॥३१॥

मूल

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥
यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३

हिं० पद्य २२

रहता भरा है शून्य होकर भी सदा आकाश ज्यों ।
रहता सदा निर्लिप्त आत्मा देह में कर वास त्यों ॥३२॥
संसार को रवि एक करता है प्रकाशित पार्थ! ज्यों ।
क्षेत्रज्ञ करता है प्रकाशित क्षेत्र को कर वास त्यों ॥३३॥

मूल

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

हिं० पद्य २३

जो क्षेत्र अरु क्षेत्रज्ञ दोनों बीच अन्तर पार्थ है।
वह प्रकृति से सब प्राणियों का मोक्ष धर्म यथार्थ है ॥
जो जान लेते हैं उसे निज दिव्य ज्ञान प्रकाश से॥
वह प्राप्त करते हैं परम पद छूटकर भव-पाश से॥३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभागयोगो नाम त्रयोदशो ऽध्यायः॥

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

हिं० पद्य १

भगवान ने फिर भी कहा सुनलो सखे वह ज्ञान भी।
सुनकर जिसे मिटता तुरत है घोर तम-अज्ञान भी॥
जिस ज्ञान से हो युक्त मुनि-गण तरगये इस लोक से।
पायी सभीने सिद्धि छूटे कर्म-बन्धन शोकसे ॥१॥

मूल

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

हिं० पद्य २

पाते मुझे हैं प्रेम से जो श्रवण करते यह कथा ।
आवागमन के जाल में पड़ते नहीं वह सर्वथा ॥
कौन्तेय ! मैं हूं बीज दाता प्रकृति मेरी योनि है ।
मैं सर्व भूतों का पिता हूं प्रकृति उनकी योनि है ॥२-३-४॥

मूल

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

हिं० पद्य ३

हे पार्थ ! देही नित्य अव्यय पड़ गुणों के फेर में ।
इस देह में रहता बँधा फिर छूटता है देह में ॥
गुण सत्व, रज, तम प्रकृति से उत्पन्न होते पार्थ हैं।
गुण दोष दोनों प्रकृति के ही धर्म भाव यथार्थ हैं॥५॥

मूल

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥६॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥७॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥
सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

हिं० पद्य ४

निर्दोष निर्मल सत्व का सुख ज्ञान माया जाल है ।
आसक्ति तृष्णा द्वेष रज की प्रबल टेढी चाल है ॥
गुण सत्व सुख से अरु रजोगुण कर्म से है बाँधता ।
भारत ! तमोगुण ज्ञान हर अज्ञान रजु से बाँधता ॥६-७-८-९

मूल

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

हिं० पद्य ५

रज तम दवें तो सत्व का होता तभी प्रावल्य है।
जब सत्व तम दब जांय रज का समझलो प्रावल्य है ॥
यों ही समझलो सत्व रज पर विजय तम पाता कभी।
इस सृष्टि की हैं भिन्न होतीं वस्तुएँ इससे कभी ॥१०॥

मूल

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकास उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत ॥११॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

हिं० पद्य ६

जब देह की सब इन्द्रियों में ज्ञान-सूर्य प्रकाश हो।
तब सत्व गुण प्रावल्य हो रज तम चला है नाश हो ॥११
जब लोभ इच्छा बढ़ रहे अतृप्ति और अशान्ति हो।
समझो रजो गुण बढ चला है मोह जब हो भ्रान्ति हो १२

मूल

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥
यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिद्यते ॥१४॥

हिं० पद्य ७

जब मोह हो आलस्य हो और बढ़ चला अज्ञान हो ।
समझो तमोगुण है बढ़ा कर्त्तव्य का नहीं ज्ञान हो ॥१३॥
जब सत्व का प्राबल्य हो उस समय यदि देहान्त हो ।
तो स्वर्ग में जाकर विचरता पार्थ ! प्राणी शान्त हो ॥१४

मूल

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

हिं० पद्य ८

रज का रहे प्राबल्य तो है कर्म गति मिलती उसे।
तम की अधिकता जो रहे पशुयोनि मिलती है उसे ॥१५॥
सत्कर्म का फल सुखद होता दुखद राजस कर्म का।
अज्ञान फल निकृष्ट मिलता नित्य तामस कर्म का ॥१६॥

मूल

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः १८

हिं० पद्य ९

उत्पत्ति रज से लोभ की है सत्व से सद्ज्ञान की।
तम से न केवल मोह की प्रत्युत महा अज्ञान की ॥१७
सात्विक पुरुष हैं स्वर्ग जाते मध्य रहते राजसी।
पाते अधोगति नीचगुण की वृत्ति वाले तामसी ॥१८॥

मूल

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१६॥

हिं० पद्य १०

कर्ता प्रकृति गुण है न कोई अन्य ऐसा जानता।
साक्षी पुरुष परब्रह्म है विश्वास ऐसा मानता ॥
जो कुछ परे है इन गुणों से जब उसे पहचानता।
वह प्राप्त मेरा भाव करता जगत को सम जानता ॥१६

मूल

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

हिं० पद्य ११

हे पार्थ ! देहोत्पत्ति के कारण गुणों को पार कर।
आवागमन के दुःखदायी बन्धनों को काट कर ॥
वह प्राप्त करता है अमरपद मुक्त को जग जाल से।
फिर फिर न आता जगत में वह छूटता भव जाल से ॥२०॥

अर्जुन उवाच मूल

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥२२।

अर्जुन बोला हिं० पद्य १२

कहते हैं त्रिगुण तीत किसको ढंग भी समुझाइये ।
किस भांति होता पार वह आचरण क्या बतलाइये ॥२१॥

श्री भगवान ने कहा

पाकर प्रकाश प्रवृत्ति मोह न द्वेष करता जो कभी ।
रखता न उनकी कामना मिलते न मिलते जो कभी ॥२२॥

मूल

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥२४।

हिं० पद्य १३

रहता उदास, न जो गुणों से पार्थ ! तिलभर टर सके ।
गुण कर रहे हैं काम अपना जानजो थिर रह सके ॥२३॥
जो स्वस्थ है जिसके लिये सुख दुःख दोनों एक हैं।
जिसके लिये सम स्वर्ण पत्थर और मिट्टी एक हैं ॥२४॥

मूल

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५।

हिं० पद्य १४

जो धीर हैं जिसके लिये प्रिय अप्रिय एक समान है।
निन्दा वड़ाई एक सम, सम मान और अपमान है ॥
रिपु मित्र सम जिसके लिये कर्मत्व भी है तज दिया।
कहते उसे ही पार्थ ! त्रिगुणातीत यह राखो हिया ॥२५॥

मूल

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२६॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।२७

हिं० पद्य १५

जो भक्त भजता है मुझे हो नित्य अविरल भक्ति से।
वह ब्रह्म-पद पाता गुणों का पार कर शुचि शक्ति से ॥२६॥
आनन्द अमृत ब्रह्म शाश्वत धर्म का आधार हूं ।
अखण्ड अव्यय नाम पावन जगत कर्णाधार हूं ॥२७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे गुण त्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशो ऽध्यायः ॥

॥ अथ पंचदशोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

श्रीभगवानने कहा हिं० पद्य १

अश्वत्थ अक्षय वृक्ष के सम्बन्ध में प्रभु ने कहा ।
है मूल ऊपर डालियां नीचे गई जिसकी अहा ॥
जिसका न होता नाश सुन्दर पर्ण जिसके वेद हैं ।
वह तत्व ज्ञानी हैं सही जो जानते यह भेद हैं ॥१॥

मूल

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि,
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

हिं० पद्य २

ऊपर तथा नीचे सभी हैं डालियां फैली हुई ।
विषयांकुरों से युक्त सिञ्चित जो गुणों से हैं हुई ॥
इसकी जड़ें जो रूप पाती कर्म का नरलोक में ।
फैली हुई हैं दूर तक वह पार्थ ! मानव लोक में ॥२॥

मूल

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण ढेन छित्वा ॥३॥

हिं० पद्य ३

नहिं दीखता इस रूप में इसलोक में पर वह कहीं ।
उसका किसीको आदि अथवा अन्त तक मिलता नहीं ॥
अश्वत्थ की गहरी जड़ों को काट सकता है वही ।
आसक्ति की मात्रा न जिसमें लेश भी बाकी रही ॥३॥

मूल

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

हि० पद्य ४

आसक्ति जिसमें है नहीं जो मान मोह विहीन है।
अध्यात्म-विद्या ज्ञान में जो नित्य रहता लीन है॥
जो मुक्त सुख दुःख द्वन्द्वों से तथा निष्काम है।
मिलता उसी ज्ञानी पुरुष को परम मेरा धाम है॥४-५॥

मूल

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

हिं० पद्य ५

वह धाम है जाकर जहांपर जन्म बन्धन टूटता ।
है मुक्ति भी मिलती जहां भव-बन्ध भी है छूटता ॥
रहता प्रकाशित नित्य ब्रह्म प्रकाश से वह धाम है ।
जहं चन्द्र सूर्य प्रकाश का रहता निशान न नाम है ॥६॥

मूल

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

हिं० पद्य ६

मेरा सनातन अन्श होकर जीव करता जोर है ।
मन सहित वह पञ्चेन्द्रियों को खींचता निज ओर है ॥७॥
जब जीव आकर देह में फिर छोड़ता है देह को ।
तब इन्द्रियों को साथ लेता वायु जैसे मेह को ॥८॥

मूल

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥
उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०

हिं० पद्य ७

जो भोगता यह जीव विषयों को कभी रह कान में।
मन घ्राण जिह्वा चक्षु में फिर तो त्वचादि मकान में ॥९॥
है कौन रहता हृदय में इससे निकलता कौन है।
ज्ञानी इसे हैं जानते जो भोगता है कौन है ॥१०॥

मूल

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥११।
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२।

हिं० पद्य ८

करके अनेकों यत्न आत्मा को यती पहँचानते ।
निर्मल नहीं है बुद्धि जिनकी वह न उसको जानते ॥११॥
होता प्रकाशित जगत जिससे सूर्य में जो तेज है ।
जो तेज पावक चन्द्र में वह पार्थ ! मेरा तेज है ॥१२॥

मूल

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौपधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

हिं० पद्य ९

जाकर मही में प्राणियों को मैं उसीसे पालता ।
मैं हो रसात्मक सोम पौधों को स्वयं ही पालता ॥१३॥
मै हूं स्वयं विख्यात वैश्वानर सभी की देह में ।
जठराग्नि हो जो नित्य रहता देह रूपी गेह में ॥१४॥

मूल

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

हिं० पद्य १०

मैं हूं पचाता अन्न हो युक्त प्राण अपान से ।
मैं हूं चराचर विश्व में विस्तार देखो ध्यान से ॥
सबके हृदय में मै अधिष्ठित हूं धनंजय जानलो ।
है ज्ञान स्मृति या नाश उनका तुम मुझी से मानलो ॥१५

मूल

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

हिं० पद्य ११

हूं जानने के योग्य मैं ही सकल वेदा में सखे ।
मैं ही सुनो वेदान्त करता पेदविद् भी हूं सखे ॥

नश्वर तथा अक्षर पुरुष दो हैं जगत में मानलो ।
सब भूत नश्वर और हैं कूटस्थ अक्षर जानलो ॥१५-१६॥

मूल

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

हिं० पद्य १२

उत्तम पुरुष हैं अन्य जो परमेश परमात्मा वही ।
त्रैलोक में हो व्याप्त करता है वही पोषण सही ॥१७॥
क्षर और अक्षर से परे उत्तम पुरुष मैं सिद्ध हूं ।
है नाम पुरुषोत्तम इसी से लोक वेद प्रसिद्ध हूं ॥१८॥

मूल

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०

हिं० पद्य १२

तज मोह मद जो पार्थ ! पुरुषोत्तम मुझे है मानता ।
सब भाव से वह है मुझे भजता तथा सब जानता ॥१९॥
हे अनघ ! मैंने गुह्यतम यह शास्त्र तुमसे है कहा ।
होगा सुबुध कृत कृत्य इसको जान यह उत्तम महा ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

संसार को निस्सार ईश्वर हीन है वह जानते।
वह मूल कारण सृष्टि का हैं वासना को मानते ॥८॥

मूल

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।१०

हिं० पद्य ६

वह मूढ़ आते हैं जगत को नष्ट करने के लिये।
रहते सदा तत्पर पराई हानि करने के लिये ॥९॥
वह मोह मद प्रेरित हुए फिरते सदा ज्ञानान्ध हो।
फिर कर्म करते क्रूर अति निर्लज्ज हो कामान्ध हो ॥१०॥

मूल

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।११

मूल

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥६॥

हिं० पद्य ४

सम्पत्ति दैवी मोक्ष देती आसुरी है हानि कर।
पाण्डव! तुम्हें संपति दैवी है मिली कल्याणकर॥
दो भांति के होते मनुज हैं देव, आसुर इस लोक में।
हैं देव तो रहते सुखी आसुर सदा ही शोक में॥६॥

मूल

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥७॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥८॥

हिं० पद्य ५

रहता नहीं है आसुरों को ज्ञान निज कर्त्तव्य का।
रहती न उनमें शुद्धता न विचार सत्यासत्य का॥७॥

हिं० पद्य २

सब पर दया तेजस्विता धृति, द्वेष का है त्यागना ।
अभिमान से भी पृथक शुचिता क्षमा मन से धारना ॥
यह गुण उन्हें ही प्राप्त होते हैं न पाते अन्य हैं ।
जो पुरुष दैवी प्रकृति में हैं जन्म पाते धन्य हैं ॥३॥

मूल

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥
दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

हिं० पद्य ३

हे पार्थ ! दम्भ कठोरता अज्ञान भी अभिमान भी ।
पाखण्ड निष्ठुरता भयानक क्रोध अरु अपमान भी ॥४॥
मिलता उन्हें जो जन्म लेते आसुरी सम्पति में ।
रहते फसे वह नित्य नूतन दुःख में आपत्ति में ॥५॥

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच मूल

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

हिं० पद्य १

भय त्याग सात्विक शुद्ध वृत्ति तथा व्यवस्था ज्ञान की।
तप यज्ञ दम स्वाध्याय शान्ति प्रवृत्ति सात्विक दान की ॥१॥
मृदुता अहिंसा त्याग फल का लाज अरु उपरामता ।
अक्रोध तृष्णा त्याग सत्य स्वभाव की शुचि सरलता ॥२॥

मूल

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥१२॥

हिं० पद्य ७

आजन्म हैं रहते फंसे वह कठिन चिन्ता जाल में ।
वह लीन रहते हैं विषय सुख भोग में हर काल में ॥११॥
कामोपभोग प्रधान जीवन लक्ष वे हैं मानते ।
सर्वस्व अपना वह उसे विश्वास पूर्वक जानते ॥१२॥

मूल

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४

हिं० पद्य ८

मुझको मिला यह आज कल होगी सफल वह कामना ।
धन पास इतना है मिलेगा और भी इतना धन। ॥१३॥

इस शत्रु को मारा तथा कल और लूंगा प्रान मैं।
मैं सिद्ध ईश्वर हूं सुखी भोगी तथा बलवान मैं ॥१४॥

मूल

आढ्योऽभिजनवानस्मि
कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य
इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६

हिं० पद्य ६

धनमाद् और कुलीन हूं है कौन अब मुझ से भला।
सुख दान मख अति ही करूंगा मोह-तममें वह पला ॥१५॥
सुख-स्वप्न में भूला हुआ तम-मोह में जकड़ा हुआ।
गिरता नरक में पुरुप कामासक्ति से अन्धा हुआ ॥१६॥

मूल

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

हिं० पद्य १०

धन आत्मश्लाघा मान मद से युक्त जितने अज्ञ हैं।
वह दम्भ से यश के लिये विधिहीन करते यज्ञ हैं ॥१७॥
जिनमें अहंकृति दर्प बल अति क्रोध काम विशेष है।
निन्दक वही करते स्व-पर में थित मुझी से द्वेश है ॥१८॥

मूल

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥२०

हिं० पद्य ११

मैं भेजता हूं क्रूर द्वेषी अधम पुरुषों को वहां।
मिलती उन्हें संसार की गति आसुरी भारत जहां ॥१९

यह मूढ़ आसुर योनि ले बहु जन्म हैं रहते नहीं।
गति नीच से भी नीच पाते पर मुझे पाते नहीं ॥२०॥

मूल

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥२१
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् २२

हिं० पद्य १२

यह नरक के ही काम क्रोध अरु लोभ तीनों द्वार हैं।
यह आत्म नाशी हैं इसी से त्याज्य सर्व प्रकार हैं ॥२१॥
इन नरक द्वारों से पुरुष जो छूट जाता पार्थ है।
करता हुआ निज श्रेय वह पाता सुगति यथार्थ है ॥२२॥

मूल

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।२४

हिं० पद्य १३

जो शास्त्र विधि को छोड़ मनसे सकल करता काम है।
मिलती न उसको सिद्धि सुख मिलता न उत्तम धाम है॥२३
अतएव शास्त्र प्रमाण कार्य अकार्य में है मानलो।
है शास्त्र विधि से कर्म करना उचित जग में जानलो॥२४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे दैवासुर संपद्विभाग योगो नाम षोडशो ऽध्यायः॥

—ः०ः—

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥

अर्जुनबोला हिं० पद्य १

शास्त्रोक्त विधि को छोड़ जो करते सश्रद्धा यजन हैं।
जो पूजते हैं और को करते न ईश्वर भजन हैं ॥
उनकी प्रकृति निष्ठा प्रभो मुझको सकल समझाइये ।
है सात्विकी या राजसी या तामसी बतलाइये ॥१॥

श्री भगवानुवाच मूल.

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥
सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥२

श्रीभगवानने कहा हिं० पद्य २

श्रद्धा सभी में पार्थ ! त्रिविधा हैं सुनो मेरी कही ।
हैं सात्विकी हैं राजसी हैं तामसी तीनों यही ॥२॥
होती प्रकृति अनुसार श्रद्धा पुरुष श्रद्धा युक्त है ।
होता पुरुष वैसा हुआ जिस भांति श्रद्धा युक्त है ॥३॥

मूल

यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४

हिं० पद्य ३

सात्विक पुरुष करते यजन हैं देवगण का प्रेम से ।
राजस पुरुष करते यजन हैं यक्षगण का नेम से ॥
तामस प्रकृति के पुरुष करते हैं यजन भूतादिका ।
निज निज प्रकृति अनुसार करते नेम सब पूजादिका ॥४॥

मूल

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥

हिं० पद्य ४

जो दंभ ममता युक्त कामाशक्ति से होकर बली।
तप घोर शास्त्र विरुद्ध करते जानलो वह हैं छली॥५॥
देहस्थ भूतों को मुझे भी कष्ट जो देते महा।
वे हैं बड़े ही मूढ़ उनमें ज्ञान कुछ भी नही रहा॥६॥

मूल

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥७॥

हिं० पद्य ५

है सर्व प्रिय आहार होता त्रिविधि मख तप दान भी।
भारत! सुनो मैं हूं बताता भेद उनका भान भी॥
भोजन तथा तप यज्ञ अथवा दान के जो नर्म पर।
है जानता चलता वही शास्त्रोक्त सात्विक धर्म पर॥७॥

मूल

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याःस्निग्धाःस्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः

हिं० पद्य ६

बल आयु सुख आरोग्य जिससे प्रीति सत्व बढ़े सदा ।
रस युक्त चिकने पुष्टिकर आनन्द प्रद जो सर्वदा ॥
रस रूप हो स्थिर रहे जिससे न होते रोग हैं ।
भोजन वही है प्रिय उन्हें जो पार्थ सात्विक लोग हैं ॥८॥

मूल

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

हिं० पद्य ७

अत्युष्ण खारे दाह कारक चरपरे कटु लटपटे ।
आहार जो हैं तेज एवं रोग दुःखप्रद चटपटे ॥
यह अन्न खाते राजसी खाते न सात्विक अन्न हैं ।
होते वही हैं प्रिय उन्हें जो पुरुष रज सम्पन्न हैं ॥९॥

मूल

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

हिं० पद्य ८

उच्छिष्ट नीरस नहिं पवित्र सड़ा हुआ बासी तथा।
जन तामसी हैं चाहते भोजन दुखद जो सर्वथा॥
राजसी और तामसी जो वस्तु हैं सब त्याग कर।
रहते वही सुख मय सदा हे पार्थ! इसको याद कर॥१०॥

मूल

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥११

हिं० पद्य ९

जो यज्ञ अर्जुन है किया जाता फलाशा त्यागकर।
वह शास्त्र के अनुकूल विधिवत् कर्म अपना मानकर॥
जो यज्ञ सात्विक है न जिसमें क्रोध हो न अशान्ति हो।
हो शुद्ध मन और शान्ति मय भटके नहीं पथ भ्रान्ति हो॥

मूल

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

हिं० पद्य १०

फल कामना से जो किया जाता धनंजय यज्ञ है ।
या यज्ञ जो दम्भार्थ होता राजसी वह यज्ञ है ॥१२॥
हो यज्ञ विधि से हीन अन्न विहीन मन्त्र विहीन जो ।
है यज्ञ तामस पार्थ श्रद्धा दक्षिणा से हीन जो ॥१३॥

मूल

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५

हिं० पद्य ११

द्विज देव गुरु विद्वान का पूजन अहिंसा सरलता ।
हैं पार्थ कायिक तप कहाते ब्रह्मचर्य पवित्रता ॥१४॥
कहना वही जो वचन प्रिय हितकर सुखद यथार्थ हैं।
स्वाध्याय का अभ्यास वाचिक तप कहाते पार्थ हैं ॥१५॥

मूल

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥

हिं० पद्य १२

व्रत मौन भाव विशुद्ध शान्ति प्रसन्नता मन की तथा।
है पार्थ मानस तप यही करना स्ववश मन सर्वथा ॥१६॥
फल कामना तज योगयुत तप त्रिविधि ये यदि प्रेमसे।
जाते किये हैं तो यही सात्त्विक कहाते नेम से ॥१७॥

मूल

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१६॥

हिं० पद्य १३

सत्कार पूजा हेतु तप जो दम्भ से होते वही ।
अस्थिर सुचंचल पार्थ तप राजस कहाते हैं सही ॥१८॥
जो कष्ट सह पर-हानि हित मन में दुराग्रह ठानकर ।
तप है किया जाना वही तामस नहीं कल्यान कर ॥१६॥

मूल

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

हिं० पद्य १४

यह दान देना है परम कर्त्तव्य ऐसा जानकर ।
जिससे न प्रत्युपकार हो शुभ धर्म अपना मानकर ॥

थल काल पात्र विचार कर जाता दिया जो दान है।
कहते उसे ही पार्थ समझो नाम सात्विक दान है ॥२०॥

मूल

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

हिं० पद्य १५

जाता दिया जो दान प्रत्युपकार फल उद्देश्य से।
वह दान राजस है सही जाता दिया जो क्लेश से ॥२१॥
जो दान पार्थ ! अपात्र में बिन देश काल विचार के।
जाता दिया जानों वही तामस बिना सत्कार के ॥२२॥

मूल

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४

हिं० पद्य १६

यह नाम ॐ तत्सत् बताते ब्रह्म के तत्त्वज्ञ हैं ।
निर्मित हुए हैं पार्थ ! जिससे वेद ब्राह्मण यज्ञ हैं ॥२३॥
इस हेतु ही सब ब्रह्मवादी ॐ प्रथम पद सर्वदा ।
तप यज्ञ दान सुकर्म जो शास्त्रोक्त हैं करते सदा ॥२४॥

मूल

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥

हिं० पद्य १७

तत् शब्द को पढ़कर फलाशा त्यागकर के सर्वथा ।
तप यज्ञ दानादिक सुकर्म मुमुक्षु भी करते तथा ॥२५॥

सद्भाव में होता सदा सत् शब्द का उपयोग है ।
होता सुमंगल कार्य में यह पार्थ ! नित्य प्रयोग है ॥२६॥

मूल

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८

हिं० पद्य १८

तप यज्ञ एवं दान में जो पार्थ स्थित है सत् वही ।
इनके लिये जो कर्म होते हैं सभी वह सत् सही ॥२७॥

श्रद्धा बिना होमादि या तप आदि जो कृत कर्म हैं ।
कहते उसे हैं असत् पर उससे न होना धर्म है ॥२८॥

(१६)

इस लोक में भारत न कुछ भी काम वह आता कभी।
परलोक में भी समझ वह होता न हितकारी कभी ॥
जो कुछ सुना तुमने धनंजय या यहाँ जो कुछ कहा
रखना सदा तुम ध्यान में उपदेश मंगलमय महा ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे श्रद्धात्रयविभाग योगो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥

॥ अथाष्टादशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच मूल

संन्यासस्य महाबाहो तत्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषिकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

हिं० पद्य १

केशव मुझे सन्यास एवं त्याग तत्व समझाइये ।
कृपया महाबाहो मुझे सब प्रथक प्रथक बतलाइये ॥१॥

श्री भगवान ने कहा

सब काम्य कर्मों को धनंजय त्यागना संन्यास है ।
कहते सुबुध हैं त्याग कर्मों के फलों का न्यास है ॥२॥

मूल

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥३॥

हिं० पद्य २

हैं दोष मय सब कर्म उनको छोड़ना ही चाहिये ।
कुछ पण्डितों की राय है कुछ भी न करना चाहिये ॥
कुछ यज्ञ तप दानादि कर्मों को उचित हैं मानते ।
करते सदा रहनाइन्हें कर्त्तव्य अपना जानते ॥३॥

मूल

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥४
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५

हिं० पद्य ३

सुनलो विषय में त्याग के जो पार्थ ! मैं निश्चय किया ।
है त्याग तीन प्रकार का यह मनीषियों ने भी किया ॥४॥

तप दान यज्ञ सुकर्म पार्थ न त्याग करने योग्य हैं।
यह पण्डितों के भी लिये कर्त्तव्य कर्म सुयोग्य हैं ॥५॥

मूल

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥
नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

हिं० पद्य ४

तज कर्म फल आशा सभी यह कर्म भी कर्तव्य हैं।
उत्तम सुनिश्चित मत यही सुन कर्म ये अतिभव्य हैं ॥६॥
अनुचित बड़ा ही नियत कर्मों का न करना त्याग है।
यदि मोह वश हो त्याग तो वह त्याग "तामस" त्याग हैं॥

मूल

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत ॥८

हिं० पद्य ५

है क्लेश होता देह को इस भाव से भय मानकर ।
या कर्म होते हैं सभी दुःखद यही मन जानकर ॥
यदि कर्म कोई छोडदे तो त्याग "राजस" है वही ।
मिलता न उसको त्याग का फल पार्थ है यह सत्य ही ॥८॥

मूल

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गंत्यक्त्वा फलंचैव स त्यागः सात्त्विको मतः ।९
न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

हिं० पद्य ६

जो कर्म फल आसक्ति तज कर्तव्य कर्म नियत करे ।
तो त्याग "सात्विक" है वही भव-बन्ध भी जिससे टरे ॥९
कल्यान कारक कर्म में आसक्त जो रहता नहीं ।
इसमें न संशय सत्व-शील सुविज्ञ त्यागी द्वेष भी करता नहीं

मूल

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् १२

हिं० पद्य ७

सम्भव न कोई देहधारी कर्म करना छोड़दे।
त्यागी वही है कर्मफल से जो पुरुष मुख मोड़दे ॥११॥
फल इष्ट मिश्र अनिष्ट होते त्रिविधि कर्मों के सभी।
बाद मरने के सकामी भोग फल पाते न पाते त्यागी कभी ॥

मूल

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

हिं० पद्य ८

हे पार्थ कारण सिद्धि के हैं पाँच बतलाये गये ।
वर्णन हुआ है सांख्य ग्रन्थों में नहीं जो है नये ॥१३॥
आधार, कर्ता, करण, चेष्टाएँ विविधि भी साथ हैं ।
है दैव पंचम सिद्धि कारण पांच येही पार्थ हैं ॥१४॥

मूल

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

हिं० पद्य ९

जो कार्य मन वच देह से अच्छे बुरे होते सभी ।
सबके यही पूर्वोक्त कारण हैं सुना जिनको अभी ॥१५॥
जो एक अपने आपको ही पार्थ कर्ता मानता ।
उसकी असंस्कृत बुद्धि है वह कुछ भी नहीं है जानता ॥१६

मूल

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७
ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

हिं० पद्य १०

नहिं लिप्त जिसकी बुद्धि है जो अहंभाव विमुक्त है ।
वह मार भी डाले किसी को पार्थ ! तो भी मुक्त है ॥१७॥
है ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय कर्म प्रवृत्ति के कारण सही ।
कर्ता करण अरु कर्म साधन कर्म के हैं तीन ही ॥१८॥

मूल

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

हिं० पद्य ११

है ज्ञान कर्ता कर्म गुण अनुसार तीन प्रकार के ।
हे पार्थ ! ज्यों के त्यों सुनो मत सांख्य शास्त्र विचार के ॥
सब प्राणियों में एक ही अविभक्त अव्यय भाव है ।
यह ज्ञान जिससे हो वही है ज्ञान सात्विक भाव है ॥२०

मूल

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१

हिं० पद्य १२

होकर पुरुष आसक्त एक पदार्थ में जिस ज्ञान से ।
सब कुछ उसी को समझ करके मोह वश अज्ञान से ॥
जिससे अनेक विभिन्न भाव विभिन्न भूतों में लखें ।
वह ज्ञान राजस है न जिससे भाव सम सबमें रखें ॥२१

मूल

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

हिं० पद्य १३

तत्त्वार्थ को जाने बिना रहता उसी में लीन है।
वह ज्ञान तामस ज्ञान है अति अल्प और मलीन है ॥२२॥
फल लोभ द्वेषासक्ति तज जाते किये जो कर्म हैं।
वह नियत कर्म सुकर्म समझो पार्थ सात्त्विक कर्म हैं ॥२३॥

मूल

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥
मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥

हिं० पद्य १४

फल लोभ से अभिमान वश करता पुरुष को कर्म है।
अति ही परिश्रम से हुआ वह कर्म राजस कर्म है ॥२४॥
परिणाम क्या होगा किसी को हानि तो होगी नहीं।
सामर्थ्य करने की इसे है पार्थ मुझमें या नहीं ॥

(१५)

इसका विचार किये बिना जो पार्थ होता कर्म है ।
वह मोहवश अरम्भकृत ही कर्म तामस कर्म है ॥२५॥
आसक्ति ममता हीन जिसमें धैर्य है उत्साह है ।
सात्विक वही कर्ता न जिसको पार्थ ! कुछ परवाह है ॥२६॥

मूल

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७।

हिं० पद्य १६

जो लालची अपवित्र हिंसक और विषयासक्त है ।
पड़ कर्म फल के लोभ में रहता सदा अनुरक्त है ॥

रहता फसा सुख दुःख द्वन्द्वों में न द्वन्द्व विमुक्त है।
कर्ता वही हैं पार्थ राजस जो विषय से युक्त है॥२७॥

मूल

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥२८॥

हिं० पद्य १७

जो चित्त का चंचल घमण्डी सभ्यता से हीन है।
पर हानि करने में सदा जो पार्थ रहता लीन है॥
शठ दीर्घ सूत्री आलसी रहता प्रसन्न न जो कभी।
कर्ता वही है पार्थ तामस विज्ञवर कहते सभी॥२८॥

मूल

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय॥२९॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी

हिं० पद्य १८

धृति बुद्धि के भी भेद होते तीन गुण अनुसार हैं ।
भारत सुनो उनके विषय में भिन्न भिन्न विचार हैं ॥२९॥
भय अभय कार्याकार्य बन्धन मोक्ष को जो जानती ।
वह बुद्धि सात्विक है प्रवृत्ति निवृत्ति को जो जानती ॥३०॥

मूल

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥
धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी

हिं० पद्य १९

जिससे न धर्माधर्म कार्याकार्य काही ज्ञान हो ।
वह बुद्धि राजस है न जिससे कर्म की पहिचान हो ॥३१

जो बुद्धि पार्थ! अधर्म को सद्धर्म लेती मान है।
हर बात में विपरीत मतदे उलट देती ज्ञान है॥

(२०)

तम से हुई जो व्याप्त भ्रम उत्पन्न करती पार्थ है।
वह तामसी है बुद्धि बतलाती न मार्ग यथार्थ है॥३२॥
जिससे करें मन प्राण इन्द्रिय कर्म सुस्थिर रूप से।
धृति है वही सात्त्विक रहे जो नित्य अविचल रूपसे॥३३॥

मूल

यथा तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥

हिं० पद्य २१

धृति राजसी है सिद्धि जो करती सहज पुरुषार्थ है।
धन धर्म काम फलाभिलाषी पुरुष पाता पार्थ है॥३४॥

धृति तामसी यह है न जिससे पुरुष दुर्मति छोड़ता ।
जिससे मनुज भय शोक निद्रा मद विपाद न छोड़ता ॥३५॥

मूल

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७

हिं० पद्य २२

सुख भी त्रिविधि है पार्थ सुनलो उन्हें तुम ध्यानसे ।
दुख दूर होजाते सकल अभ्यास से अरु ज्ञानसे ॥३६॥
जो आदि में विष सम सुधासा अन्त में जो है वही ।
जो आत्मा बुद्धि प्रसाद से सुख प्राप्त हो सात्विक वही ॥

मूल

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३६॥

हिं० पद्य २३

जो आदि में होता सुधासा अन्त में विष तुल्य ही।
संयोग से जो इन्द्रियों के लाभ सुख हो राजस वही ॥३८॥
आद्यन्त जो सुख लोभ दे रहता फसाये मोह में।
सुख है वही तामस लगाये जो रहे नित द्रोह में ॥३९॥

मूल

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ४०
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

हिं० पद्य २४

आकाश पृथ्वी बीच या सुरलोक में कोई नहीं।
जो प्रकृति के इन त्रयगुणो से मुक्त हो सम्भव नहीं ॥४०॥

हे पार्थ ! ब्राह्मण वैश्य क्षत्रिय शूद्र के जो कर्म हैं ।
यह प्रकृतिजन्य गुणानुसार विभक्त सारे कर्म हैं ॥४१॥

मूल

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥

हिं० पद्य २५

शम दम सरलता क्षान्ति तप विज्ञान आस्तिकता तथा।
है ज्ञान शुचिता ब्रह्म कर्म सुभावजन्य सुसर्वथा ॥४२॥
धृति तेज शौर्य सुदक्षता रण से न हटना धर्म है ।
करना सुशासन दान देना पार्थ ! क्षत्रिय कर्म है ॥४३॥

मूल

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥

हिं० पद्य २६

वाणिज्य गोरक्षा तथा कृषि वैश्य कर्म स्वभाव से।
करना धनंजय द्विजाति-सेवा शूद्र कर्म स्वभाव से ॥४४॥
रहकर स्वकर्मों में निरत नर प्राप्त करते सिद्धि को।
भारत! सुनो वह स्वकर्म-रत कैसे पहुंचते सिद्धि को ॥४५॥

मूल

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६।
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।४७

हिं० पद्य २७

सब की हुई उत्पत्ति जिससे यह जगत उससे व्याप्त है।
निजकर्म से नर पूज उसको सिद्धि करता प्राप्त है ॥४६॥

है दोष युक्त स्वधर्म श्रेयस्कर सुखद परधर्म से ।
लगता न पाप स्वभावजन्य स्वकर्म रूप स्वधर्म से ॥४७॥

मूल

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

हि० पद्य २८

यदि कर्म स्वाभाविक सदोष है तो भी उसे छोड़े नहीं।
है अग्नि एवं धूम सम सब कर्म मिश्रित भिन्न दोषों से नहीं ॥
निस्पृह जितात्मा यदि नहीं रहता कहीं आसक्त है ।
संन्यास द्वारा सिद्धि वह नैष्कर्म्य करता प्राप्त है ॥४९॥

मूल

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥

हिं० पद्य २९

वह सिद्धि प्राप्त मनुष्य कैसे ब्रह्म में मिलता सुनो।
वह परम निष्ठा ज्ञान की संक्षेप में मुझ से सुनो ॥५०॥
कर आत्म संयम धैर्य से शुचि बुद्धि से संयुक्त हो।
शब्दादि विषयों को हटाकर राग द्वेष विमुक्त हो ॥५१॥

मूल

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५१॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

हिं० पद्य ३०

एकान्त सेवी हो मिताहारी विरक्त-रत हो सदा।
तन मन तथा वाणी स्ववश कर ध्यान में रह सर्वदा ॥५२॥

बल दर्प कामासक्ति क्रोध तथा अहंकृति हीन हो ।
नर शान्त ममता रहित रहता ब्रह्म में ही लीन हो ॥५३॥

मूल

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

हि० पद्य ३१

वह ब्रह्मभूत प्रसन्न नर करता न चिन्ता चाह है ।
समभाव सब में भक्ति करता प्राप्त वह नर-नाह है ॥५४॥
मैं कौन कितना हूं इसे वह जान जाता भक्ति से ।
फिर प्राप्त करता है मुझे उस भक्ति रूपी शक्ति से ॥५५॥

मूल

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

हिं० पद्य ३२

करता हुआ भी कर्म सब ले शरण मेरी सर्वदा ।
मेरी कृपा से अमर अव्यय प्राप्त करता पद सदा ॥५६॥
कर कर्म सब अर्पण मुझे मनमें समझ मुझको सगा ।
सद्बुद्धि का आश्रय सदा राखो मुझी में चित लगा ॥५७

मूल

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥
यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥

हिं० पद्य ३३

मेरी कृपासे दुःख होंगे दूर सब यह मानलो ।
ऐसा करोगे यदि नहीं तो नष्ट होगे जानलो ॥५८॥

अभिमान वश यदि ठान लोगे मैं लड़ूंगा ही नहीं ।
तो भी प्रकृति तुमको लड़ादेगी न भग सकते कहीं ॥५९॥

मूल

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत्
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥

हिं० पद्य ३४

कौन्तेय ! कर्म स्वभाव से है बद्ध मोहाधीन हो ।
करना न चाहोगे करोगे वह प्रकृति आधीन हो ॥६०॥
सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर सदा रहता सही ।
कर पार्थ ! यन्त्रारुढ़ माया से नचाता है वही ॥६१॥

मूल

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं

इति मया।
विमृश रु ॥६३॥

हे पार्थ ! उसकी श ण में सब भाव जाओ तभी।
स्थान होगा शान्ति शाश्वत जिसको कृ प्राप्त भी ॥६२
मैंने बताया गुप्त से भी गुप्त ज्ञान तुमको सही।
उसपर विचारो फिर करो जो पार्थ ! इच्छा हो वही ॥६३॥

मूल

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

हिं० पद्य ३६

फिर यह सुनो जो गुप्त सबसे एक उत्तम बात है।
दृढ़ भक्त हो कहता इसी से पार्थ ! तू प्रिय तात है ॥६४

मुझ में लगाओ मन यजन मेरा करो नतसिर भी मुझे।
मुझ में मिलोगे सत्य ही प्रिय हो मुझे भजलो मुझे ॥

मूल

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६
इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥६७॥

हिं० पद्य ३७

त्यागकर सब धर्म तुम केवल शरण मेरी गहो ।
मैं मुक्त पापों से करूंगा शोक मत कुछ भी लहो ॥६६॥
सुनना नहीं जो चाहता तप भक्ति जो करता नहीं ।
निन्दा निरत रहता उसे यह बात बतलाना नहीं ॥६७॥

मूल

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

हिं० पद्य ३८

इस ज्ञान का उपदेश भक्तों को करेगा जो वही।
पा भक्ति मेरी परम मुझमें आमिलेगा सत्य ही॥६८॥
उससे अधिक कोई मुझे है चाहता संभव नहीं।
प्रिय विश्व में उससे अधिक कोई मुझे होगा नहीं॥६९॥

मूल

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥७०
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्

हिं० पद्य ३९

यह धर्म का संवाद जो कोई पढ़ेगा ध्यान से।
समझो किया पूजन मेरा अति यज्ञ रूपी ज्ञानसे॥७०॥

तज दोष बुद्धि सप्रेम जो इसको सुनेगा युक्त हो।
शुभ लोक में पद पुण्य पावेगा परम वह मुक्त हो ॥७१॥

मूल

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥७२॥

अर्जुनोवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

हिं० पद्य ४०

तुमने सुना यह ध्यान से या चित्त था भ्रमता कहीं।
तम मोह नष्ट हुआ तुम्हारा पार्थ या अब भी नहीं ॥७२॥

अर्जुन बोला

अच्युत ! स्मृति हो दृढ़ हुआ सब मोह मेरा मिटगया।
जो कुछ कृपा करके कहा है वह करूंगा भ्रम मिटगया ॥७३॥

संजयउवाच मूल

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥

संजय बोला—हिं० पद्य ४१

श्री कृष्ण अर्जुन का सुना संवाद मैंने यह यथा।
अद्भुत तथा रोमांचकारी है सुखद जो सर्वथा ॥७४॥
मैंने सुना यह व्यास का मुझपर अनुग्रह है महा।
यह योग योगेश्वर स्वयं श्री कृष्ण श्री मुख से कहा ॥७५॥

मूल

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः

हिं० पद्य ४२

करके स्मरण श्रीकृष्ण अर्जुन के सुखद उपदेश का ।
होता बड़ा ही हर्ष राजन् भय न रहता क्लेश का ॥७६॥
जब जब स्मरण होता मुझे हरि रूप का अद्भुत बड़ा ।
होता मुझे है हर्ष राजन् और विस्मय भी बड़ा ॥७७॥

मूल

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

हिं० पद्य ४३

श्रीकृष्ण योगेश्वर धनुर्धर पार्थ यह होंगे जहां ।
है राय मेरी विजय नीति विभूति श्री होगी वहां ॥
यह मोक्ष और सन्यास योग कहे गये दोनों यहां ।
रहता न दुख लवलेश इसका पाठ होता है जहां ॥७८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे मोक्ष संन्यास योगो नामाष्टादशोऽध्यायः॥

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

इति शुभम

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।
गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर ॥

ॐ गीता प्रार्थना ॐ

श्री भगवद्गीते ! मोहन मन्त्र सिखादे ॥
अर्जुन हृदय शान्ति-कारक आ ! अनुपम प्रभा दिखादे ।
'मृण्मय' जगत जानले जाविधि सोई मारग दरसादे ॥
श्रीभगवद्गीते० ॥ १ ॥

हृत्तन्त्री के तार हिलाकर जीवन शंख बजादे ।
विज्ञान-कला-संगीत बजाकर साहस-साज सजादे ॥
श्रीभगवद्गीते० ॥ २ ॥

मस्त बनाकर समदृष्टी की बूटी शुद्ध खिलादे ।
काम-क्रोध-मद-लोभ दूर कर अमृत हमें पिलादे ॥
श्रीभगवद्गीते० ॥ ३ ॥

वेद-विहित शुभ कर्म बताकर बाधा विघ्न भगादे ।
सोई हुई हृदय-कलियों को कौशल मयी ! जगादे ॥
श्रीभगवद्गीते० ॥ ४ ॥

त्रिगुण-तिमिरमें फिरें भटकते ज्ञान-दीप चमकादे ।
'सत्यदेव' सहसा विद्युत-सम निस्त्रैगुण्य बनादे ॥
श्रीभगवद्गीते० ॥ ५ ॥